कबीर की काव्य-दृष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

पी-एच.डी. (हिन्दी साहित्य)

विषय में उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध प्रबन्ध

शोधार्थिनी

आरती देवी शुक्ला

नामांकन सं. 161595217827

शोध निर्देशिका

डॉ0 ब्रजलता शर्मा

हिन्दी विभाग कला संकाय

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

सत्र-2026

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

ग्राम- थनरा, पोस्ट- दिनारा, तहसील- करैरा, एन0एच0- 27,
शिवपुरी, (म0प्र0) पिनकोड- 473665

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

University Established Under section 2F of UGC ACT 1956 Vide M.P. Government Act No17 of 2015

शोध निर्देशक का प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि पी0के0 विश्वविद्यालय, शिपपुरी (म.प्र.) के हिन्दी संकाय के अंतर्गत डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु **''कबीर की काव्य–दृष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन''** शीर्षक शोध अध्ययन **आरती देवी शुक्ला** द्वारा मेरे निर्देशन में 240 दिन से अधिक उपस्थित होकर शोध कार्य किया गया इनका शोध कार्य मौलिक है।

यह भी प्रमाणित किया जाता है कि:–

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध विश्वविद्यालय अनुदान आयोग विनियम 2009 के अनुरूप पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी म.प्र. के पीएच.डी. उपाधि मध्यप्रदेश के सभी अपेक्षाओं को पूर्ण करता है।

शोध–प्रबन्ध में प्रस्तुत कार्य विश्वविद्यालय में पंजीयन के बाद किया गया है।

शोध निर्देशिका

दिनांकः–.....

स्थानः– शिवपुरी (म.प्र.)

(डॉ. ब्रजलता शर्मा)
हिंदी विभाग कला संकाय

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

University Established Under section 2F of UGC ACT 1956 Vide M.P. Government Act No17 of 2015

शोधार्थी का घोषणा–पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करती हूँ कि, **"कबीर की काव्य–दृष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन"** शीर्षक प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में सम्मिलित समग्र कार्य मेरा अपना और मौलिक है।

यह शोध–प्रबन्ध (अंशतः या पूर्णतः) किसी भी विश्वविद्यालय में किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

यह शोध कार्य 240 दिन से अधिक उपस्थित होकर निर्देशक के सानिध्य में पूर्ण किया गया।

शोधार्थिनी

दिनांकः–.....

स्थानः– शिवपुरी (म.प्र.)

आरती देवी शुक्ला

नामांकन सं.161595217827

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

University Established Under section 2F of UGC ACT 1956 Vide M.P. Government Act No17 of 2015

कॉपीराइट हस्तांतरण प्रामण–पत्र

थीसिस का शीर्षक "कबीर की काव्य–दृष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन"

शोधार्थी : आरती देवी शुक्ला

कॉपीराइट हस्तांतरण

अधोहस्ताक्षरी एतद्वारा पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी को पीएच.डी. उपाधि प्रदान करने के लिए प्रस्तुत उपरोक्त शोध प्रबंध के सभी कॉपीराइट सौंपते हैं।

शोधार्थिनी

दिनांकः–.....

स्थानः– शिवपुरी (म.प्र.)

आरती देवी शुक्ला

नामांकन सं.161595217827

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

University Established Under section 2F of UGC ACT 1956 Vide M.P. Government Act No17 of 2015

संस्थान के प्रमुख का अग्रेषित पत्र

थीसिस शीर्षक : **"कबीर की काव्य–दृष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन"** **आरती देवी शुक्ला** द्वारा छह प्रतियों में विश्वविद्यालय को जमा किया जा रहा है। शोधार्थी ने आवश्यक शुल्क का भुगतान कर दिया है और उसके विरूद्ध कोई बकाया नहीं है।

नाम.....सील.....

दिनांक.....

स्थान.....

(संस्था के प्रमुख के हस्ताक्षर जहां उम्मीदवार पीएचडी डिग्री के लिए पंजी.)

निर्देशक के हस्ताक्षर

दिनांकः–

दिनांक.....

स्थान.....

पता.....

.....

.....

DrillBit

The Report is Generated by DrillBit Plagiarism Detection Software

Selected Language Hindi

Submission Information

Author Name	आरती शुक्ला
Title	कबीर के काव्यदृष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन
Paper/Submission ID	5574617
Submitted by	library.pku@gmail.com
Submission Date	2026-04-30 16:17:16
Document type	Thesis Chapter

Result Information

Similarity 4%

A Unique QR Code use to View/Download/Share Pdf File

LIBRARIAN
P.K. University
Shivpuri (M.P.)

आभार

किसी शोध कार्य के लिए आभार व्यक्त करना उन सभी के संयुक्त प्रयासों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का अवसर है जो प्रेरणा और समर्थन के स्रोत रहे हैं और जिन्होंने ज्ञान की खोज में सफलता प्राप्त करने के लिए अमूल्य योगदान दिया है। अत्यंत विनम्रता और गर्व के साथ, मैं उन प्रेरक व्यक्तियों को याद करती हूँ जिन्होंने मेरे कार्य को आगे बढ़ाया है, और मैं उनकी अटूट निष्ठा के लिए अपार प्रसन्नता, कृतज्ञता और धन्यवाद से परिपूर्ण हूँ। सर्वप्रथम, मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर को इस परियोजना को पूरा करने के लिए मुझे प्रदान की गई दृढ़ता, साहस और शक्ति के लिए धन्यवाद देना चाहती हूँ।

सर्वोच्च, मैं अपने आदरणीय पर्यवेक्षक, डॉ. ब्रजलता शर्मा , हिंदी विभाग कला संकाय, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी, (मध्य प्रदेश) के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ, जिनके बिना यह कार्य संभव नहीं हो पाता। उनका असाधारण मार्गदर्शन, अटूट समर्थन, दयालु सहयोग और अनुकूल कार्य वातावरण प्रदान करना अमूल्य रहा है। मैं उनके प्रति ऋणी हूँ जिन्होंने मुझमें उत्कृष्टता की निरंतर खोज, ईमानदारी की प्रबल भावना और हमारे पेशे को संचालित करने वाले नैतिक सिद्धांतों के प्रति सम्मान की भावना पैदा की।

इसके अतिरिक्त, मैं श्री जगदीश प्रसाद शर्मा, कुलाधिपति, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) को अपने शोध कार्य के दौरान आवश्यक बुनियादी ढांचा और सुविधाएं प्रदान करने के लिए हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। मैं प्रो. (डॉ.) मुकेश चानसोरिया, कुलपति, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) के प्रति भी अपनी गहरी कृतज्ञता, आस्था और श्रद्धा व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने मेरे शोध के दौरान उदार और बहुमूल्य सहयोग प्रदान किया।

मैं इस सुखद अवसर पर परम पूज्य डॉ. जितेंद्र कुमार मिश्रा, कार्यकारी निदेशक, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता और

श्रद्धा व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने निरंतर प्रोत्साहन दिया और मुझे आवश्यक सुविधाएं प्रदान कीं, जिससे मैं अपना परियोजना कार्य पूरा कर सका।

पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) के रजिस्ट्रार डॉ. जितेंद्र मलिक का मैं तहे दिल से आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रम के बावजूद इस कार्य की शुरुआत से ही मुझे प्रोत्साहन और समर्थन दिया है। शोध कार्य के दौरान उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार और धैर्य के लिए मैं उन्हें धन्यवाद देने के लिए शब्दों की कमी महसूस करती हूँ।

मैं पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) की डीन एकेडमिक्स डॉ. ऐमन फातिमा का भी आभार व्यक्त करती हूँ।

मैं पी.के. विश्वविद्यालय, मध्य प्रदेश के पीएचडी सेल के प्रभारी डॉ. आशीष विश्वकर्मा और डॉ. मनीष कुमार का भी हार्दिक आभार और प्रशंसा व्यक्त करती हूँ।

मैं पी.के. विश्वविद्यालय (मध्य प्रदेश) के हिंदी विभाग कला संकाय के प्रोफेसर डॉ. महालक्ष्मी जोहारी और डॉ. विष्णुकांत वर्मा को उनके बहुमूल्य सहयोग और मार्गदर्शन के लिए धन्यवाद देती हूँ।

मैं पी.के. विश्वविद्यालय की लाइब्रेरियन सुश्री निशा यादव, सहायक लाइब्रेरियन श्री आनंद कुमार और अन्य स्टाफ सदस्यों का भी आभार व्यक्त करती हूँ। मैं पी.के. विश्वविद्यालय के सूचना प्रौद्योगिकी प्रकोष्ठ के श्री पंकज सिंह, श्री आलोक खरे और श्री पुरुषोत्तम यादव की भी आभारी हूँ।

अपने शोध कार्य के दौरान अपने प्रिय माता-पिता, भाइयों और पति के प्रेम, समर्थन और निरंतर प्रोत्साहन के लिए मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए शब्दों में क्षीण हूँ।

अंत में, मैं इस बात के लिए हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहती हूँ कि मुझे पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (मध्य प्रदेश) में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर

अवसर मिला। मैं इस विश्वविद्यालय की ऋणी रहूँगी; इसने मेरे जीवन को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और मेरे हृदय में इसका विशेष स्थान है।

अपने शोध कार्य के दौरान अपने परिवार के सदस्यों के सहयोग और अटूट प्रेम के लिए मैं उनका भी आभार व्यक्त करती हूँ। अंत में, मैं सर्वशक्तिमान ईश्वर की कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे जीवन के सबसे कठिन समय का सामना करने का साहस और शक्ति प्रदान की और मेरी प्रार्थनाओं का विशेष रूप से उत्तर दिया। मैं अपने जीवन में अब तक जो कुछ भी हासिल किया है, उसके लिए आभारी हूँ।

तारीख:...../...../.....

आरती **देवी** शुक्ला

स्थान: शिवपुरी, (म.प्र.)

नामांकन संख्या: (161595217827)

विषय अनुक्रमणिका

क्र0 सं0	विवरण	पृ0क्र0
1	**प्रथम अध्याय** • प्रस्तावना, • साहित्य समीक्षा, • अध्ययन पद्धति, • शोध परिकल्पनाएँ, • शोध की नवीनता, • शोध की आवश्यकता एवं उद्देश्य, • शोध काक्षेत्र, • शोध की सीमायें, • शोध प्रश्न, • शोध विषय की पृष्ठभूमि, • कबीर का संक्षिप्त जीवन परिचय	7–34
2	**द्वितीय अध्याय** कबीर की काव्य दृष्टि • काव्य की शैली, भाषा, प्रतीक • साखी सबद, रमैनी की भूमिका • निर्गुण भक्ति और अध्यात्मवाद	35–84
3	**तृतीय अध्याय** कबीर की सामाजिक चेतना • जातिवाद, छुआछूत, पाखंड का विरोध • समानता, मानवता और सहिष्णुता का संदेश • धार्मिक सहिष्णुता और समन्यवाद	85–118
4	**चतुर्थ अध्याय** आधुनिक संदर्भ में कबीर • समकालीन समाज में कबीर प्रासंगिकता • साहित्य, कला और जन आदोलनों में कबीर • आधुनिक विचारधाराओं में कबीर का स्थान	119–158

5	**पंचम अध्याय** • शोध के प्रमुख निष्कर्षो का सार • आगे के अनुसंधान की संभावनाएं	159–171
6	**षष्ठ अध्याय** **उपसंहार**	172–180
7	**संदर्भ ग्रन्थ सूची** प्रकाशित शोध पत्र	181–183

प्रस्तावना

1. प्रस्तावना

कबीर के साहित्य का आध्यात्मिक पक्ष भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह माया, जीव–जगत, ब्रह्म तत्व आदि के दार्शनिक आधार पर संरचनात्मक रूप से स्थित है। माया को महा ठगिनी के रूप में परिभाषित करते हुए आत्मा को इसके जाल से मुक्त करना आवश्यक बताया गया है। ये तत्व जन–मानस की चेतना को प्रभावित करने में अफीम की पुड़िया के समान कार्य करते हैं। मध्यकालीन भारतीय समाज एक गहरे वर्गीकरण, रूढ़िवादी प्रवृत्तियों, जातिगत विभाजन और धार्मिक असहिष्णुता से प्रभावित था। इसी प्रकार के परिवेश में संत कबीरदास जी का जन्म तथा उनके काव्य का विकास हुआ। कबीरदास जी की काव्य दृष्टि प्रत्यक्ष रूप से समाज की कुप्रथाओं, समकालीन विषमताओं और भेदभाव के विरुद्ध प्रतिरोध प्रस्तुत करती है।

कबीर का काव्य लोक मंगल की व्यापक भावना से ओत–प्रोत है, जिसमें सामाजिक परिवर्तन की चेतना तथा व्यक्तिगत आत्म–परिष्कार का स्पष्ट संदेश निहित है। उनकी काव्य दृष्टि संपूर्ण मानवता के दार्शनिक चिंतन, सामाजिक समता, निर्गुण भक्ति, कर्मशीलता और जीवन की यथार्थताओं का स्पष्ट प्रतिपादन करती है। कबीरदास जी ने जाति, वर्ण और संप्रदायिक विभाजनों की दीवारों को खण्डित करते हुए सामान्य मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा को सुदढ़ किया है। उनकी दृष्टि में मानव धर्म ही सर्वोपरि धर्म है। उन्होंने वाह्य आडंबर, धर्माधता, जातिवाद तथा पाखंड पर आधारित विभाजनों का निर्भीक विरोध किया है। साथ ही, समाज में

व्याप्त छुआछूत, जात–पात, पाखंड और अन्य सामाजिक विकृतियों पर तीक्ष्ण व्यंगों के माध्यम से प्रहार किया है। उन्होंने हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों समुदायों की संकीर्णताओं को समान रूप से चुनौती प्रदान की, तथा मूर्ती–पूजा, रोजा, नमाज, तिलक, त्रिपुंड आदि की आलोचना करते हुए समाज में समता, प्रेम, सहजता और भाईचारे की स्थापना का संदेश दिया है। साथ ही, जन–मानस को जागत करते हुए स्वतंत्र चिंतन की प्रेरणा भी प्रदान की है।

साहित्यि समीक्षा

कबीर की काव्य दृष्टि निर्गुण भक्ति तथा सामाजिक सुधार केन्द्र में अवस्थित है, जो आध्यात्मिक जागरण, रूढ़िवादी प्रवत्तियों के विरोध तथा मानवतावादी दष्टिकोण को सुस्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित करती है। उनके दोहों, साखियों और पदों में तीक्ष्ण, सरल तथा प्रभावपूर्ण भाषा के माध्यम से यह अभिव्यक्ति प्रकाशित होती है।

कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे, जहाँ राम अथवा हरि सर्वव्यापी, निराकार सत्ता के प्रतीक के रूप में अवस्थित हैं, न कि साकार देवता के रूप में। उनका काव्य भक्ति, गुरु–महत्त्व तथा धर्म–समन्वय पर विशेष जोर देता है, जिसमें हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों के कर्मकांडों का स्पष्ट तथा निर्भीक विरोध प्रतीत होता है। भाषा सधुक्कड़ी (अवधी–ब्रज मिश्रण) के रूप में स्वाभाविक, व्यंग्यपूर्ण तथा रहस्यपूर्ण शैली से युक्त है।

सामाजिक दृष्टि व आध्यात्मिक दर्शन

कबीर समाज–सुधारक के रूप में रूढ़ियों, जातिवाद, मूर्तिपूजा तथा पाखंड पर तीक्ष्ण प्रहार करते हैं, जैसे "माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर"। उनका उद्देश्य आंतरिक शुद्धि तथा सत्संगति पर विशेष बल देना

था, जो आर्थिक–पर्यावरणीय चेतना से भी संबद्ध है। काव्य में लोक–जीवन के प्रतीक, जैसे पक्षी, पेड़ और प्रकृति के माध्यम से नैतिक शिक्षा प्रस्तुत की गई है।कबीर की दृष्टि में सच्चा धर्म हृदय की सत्यनिष्ठा के रूप में परिभाषित है–

"साँच बराबर तप नहीं, झूठे बराबर पाप"।

गुरु ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग है, तथा संसार माया के जाल के रूप में परिकल्पित है। रसों में शांत, भक्ति तथा अद्‌भुत के प्रभाव का प्राधान है, जबकि छंद मुक्त दोहा–चौपाई पर आधारित हैं।

कबीर की काव्य दृष्टि के अध्ययन हेतु ऐतिहासिक, दार्शनिक, साहित्यिक तथा समाजशास्त्रीय सभी दृष्टियों को एकीकृत करने वाली बहुविध शोध पद्धति अधिक उपयुक्त सिद्ध होती है। कबीर के युगीन संदर्भ के साथ–साथ आज की सामाजिक संरचना में उनके विचारों की प्रासंगिकता भी स्पष्ट होती है।

कबीर का भक्ति काव्य मानवीय नैतिकता, आचरण की शुद्धता, प्रेम, दया, अहिंसा, सत्य, समानता तथा समाज–सुधार के दृष्टिकोण से अत्यंत समृद्ध है। इसमें *कर्म* तथा *भक्ति* का अद्वितीय समन्वय प्रत्यक्ष होता है, जहाँ बाह्य आडंबरों के स्थान पर आंतरिक स्वच्छता तथा सदाचार को भक्ति का दर्पण बताया गया है। इस प्रकार उनकी काव्य–धारा *नैतिक भक्ति* की जीती–जागती मिसाल के रूप में उभरती है।

यह दृष्टि मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की केन्द्रीय धुरी है, जो आधुनिक संदर्भों में पर्यावरण चेतना तथा सामाजिक समानता के लिए अत्यधिक प्रासंगिक है। शोध के परिप्रेक्ष्य में कबीर को एक फक्कड़ संत के

रूप में देखा जाता है, जिनकी वाणी मानवीय संवेदना को विस्तृत आयाम प्रदान करती है।

अध्ययन पद्धति

कबीरदास जी साहित्य के अत्यंत महत्वपूर्ण संत कवियों में से एक के रूप में परिचित हैं। उनका जन्म लगभग 1398 ई. के आसपास उत्तर–प्रदेश के वाराणसी (काशी) में माना जाता है। ऐसा मान्यता है कि उपरांत उन्हें नीरू तथा नीमा नामक जुलाहा दंपत्ति द्वारा लालन–पालन प्रदान किया गया। कबीर औपचारिक रूप से पढ़े–लिखे नहीं थे, तथापि वे अपने परिवार के कपड़े बुनते हुए भक्ति भाव से पदों की रचना करते रहे। उनके पदों को जन–समूह बड़े उत्साह से सुनता था, कुछ लोग उन्हें कठस्थ करते तथा कुछ लिखित रूप में संग्रहित करते थे। उनके श्रोताओं में हिन्दू तथा मुस्लिम दोनों समुदायों के लोग शामिल थे, जिससे उनके विचारों का व्यापक प्रसार हुआ और उनके शिष्यों की संख्या भी निरंतर बढ़ती गई। उनकी पूजा–पद्धति अन्य धर्म–सम्प्रदायों से विभिन्न तथा विशेष प्रकृति की थी। इनकी काव्यदृदृष्टि ने मध्यकालीन समाज में व्याप्त धार्मिक पाखंडों, जड़ताओं तथा सामाजिक अन्यायों को गहराई से चुनौती प्रदान की। कबीर ने निर्गुण भक्ति पर आधारित साहित्य की एक विशिष्ट तथा प्रभावी धारा का प्रतिपादन किया, जो आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी समान रूप से प्रासंगिक बनी हुई है।

भक्तिकालीन कवियों में कबीर को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता है। इनका युग सामंतवाद के प्रभाव से युक्त एक महत्वपूर्ण काल था। इनका उद्देश्य समाज में व्याप्त सामाजिक बुराइयों का उन्मूलन करना ही नहीं, बल्कि जहाँ तक संभव हो सके, समाज में नैतिक मानदंडों की स्थापना करना भी था। कबीर का भक्ति काव्य केवल आध्यात्मिक अनुभूति

तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसमें नैतिक मूल्यों की स्थापना का स्पष्ट आभास भी प्राप्त होता है।

''सत्य, अहिंसा एवं मानवता''

साँई बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।

जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप।।

इस दोहे के माध्यम से कबीर सत्य की सर्वोच्च महत्ता को प्रतिपादित करते हुए झूठ की निंदा करते हैं और धर्म को सत्य से अभेद मानने की प्रवत्ति को प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने सत्य को ही तप, भक्ति तथा धर्म का मूल आधार स्वीकार किया है, जो आत्मा को परमात्मा से एकीकत करने का सच्चा पथ है।

अहिंसा तथा दया–

दिनभर रोजा रखते हैं, राति हनते हैं गाय।

यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।

यह दोहा आज भी समाज के लिए अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होता है। मनुष्य धर्म में उपवास का आड़म्बर प्रदर्शन करते हैं, परन्तु उनके व्यवहारिक जीवन में हिंसा, घणा, पक्षपात तथा अधर्म की प्रवत्तियों व्याप्त रहती हैं। कबीर ने असली धर्म की पहचान प्रेम, करूणा, अहिंसा तथा सत्य आचरण में स्वीकार की है। वे स्पष्ट करते हैं कि मानवता तथा नैतिकता ही सच्चे धर्म का आधार हैं, केवल उपवास, पूजा, नमाज अथवा मंत्र जाप से ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है।

इधर धार्मिक पाखंडों का विरोध करते हुए कबीरदास जी कहते हैं–

''पत्थर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूं पहाड़।

ताते ये चाकी भली, पीस खाए संसार।।''

इस दोहे में मूर्तिपूजा तथा धार्मिक आड़म्बरों पर तीक्ष्ण व्यंग प्रस्तुत किया गया है। यदि पत्थर पूजने से ईश्वर की प्राप्ति होती, तो कवि स्वयं पूरे पहाड़ की पूजा करने हेतु तत्पर होते। उन्होंने स्पष्ट किया कि पत्थर की पूजा से कोई आत्मिक लाभ प्राप्त नहीं होता। इसी संदर्भ में चकिया के पत्थर को अधिक उपयोगी बताते हुए वे कहते हैं कि वह अन्न पीसकर जन–जन का पोषण करती है। इस प्रकार सच्चा धर्म वही है जो मानव सेवा तथा सत्कर्मों से संबद्ध हो।कबीर इस दोहे के माध्यम से सत्य के पथ पर चलने की प्रेरणा प्रदान करते हैं–

''करे बुराई सुख चहै, कैसे पावे कोय।
रोपे पेड़ बबूल का, आम कहाँ ते होय।।''

वे प्रतिपादित करते हैं कि जो मनुष्य दुष्कर्म अथवा अनुचित व्यवहार करता है, वह सुख की आशा कैसे कर सकता है। बबूल के पेड़ से मीठे फल की आशा करना अतार्किक है। अतः मनुष्य को अपने कर्मों के आधार पर ही फल प्राप्त होता है। गलत कर्म का परिणाम भी अनुरूप होता है। अतः उच्च विचार, उत्तम सोच तथा सत्कर्मों का आचरण आवश्यक है।

यहाँ कबीरदास जी मेहनत की महत्ता को स्पष्ट करते हैं–

''कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय।
सत समुद्र आड़ा पड़े, मिले अगाड़ी आय।।''

इस दोहे के माध्यम से कबीर यह प्रतिपादित करते हैं कि सच्ची मेहनत अथवा आध्यात्मिक कमाई कभी व्यर्थ नहीं जाती। यदि उसका फल तुरन्त न मिल, तो भी वह उचित समय पर अवश्य प्राप्त होता है। सच्ची लगन तथा भक्ति सदा फलदायक होती है। जीवन में विभिन्न बाधाओं तथा दूरियों के बावजूद, असली साधना तथा मूल्यवान कर्म अन्त में सफलता

प्रदान करते हैं। अतः मनुष्य को कठिनाइयों के बावजूद अपने पथ पर अडिग रहना चाहिए।

शोध परिकल्पना–

कबीर की काव्य दृष्टि में गहन सामाजिक चेतना सुस्थापित है, कबीरदास अपनी रचनाओं के माध्यम से तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त कुप्रथाओं जैसे जाति–भेद, छुआछूत, धार्मिक अंधविश्वास तथा बाह्याचार का सुस्पष्ट विरोध प्रस्तुत करते हैं तथा मानव की आंतरिक शुद्धता, कर्तव्यनिष्ठा, समानता और मानवतावादी मूल्यों को सर्वोपरि स्वीकार करते हैं। उनके काव्य में समाज–सुधार, जातिवाद, धार्मिक पाखंड तथा सामाजिक विषमता के विरुद्ध एक सशक्त वैचारिक आंदोलन के रूप में अभिव्यक्त होता है। कबीरदास का काव्य न केवल आध्यात्मिक विमर्श का प्रतिपादन करता है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन, मानवीय मूल्यों की स्थापना तथा सहज प्रेम और एकता की चेतना को भी जागृत करता है।परिकल्पना के कुछ मुख्य सूत्र–

1. कबीर के काव्य में उन्नयन का पथ प्रदर्शन किया गया है तथा समाज के ज्वलंत प्रश्नों तथा कुप्रथाओं (जातिवाद, धार्मिक पाखंड, बाह्याचार) पर तीक्ष्ण प्रहार किया गया है।
2. काव्य में सामाजिक चेतना मानवीय एकता, आर्थिक तथा सामाजिक विषमता, समभाव और शोषण के विरोध तथा एक संतुलित समाज की परिकल्पना के रूप में परिलक्षित होती है।
3. कबीर की दृष्टि निर्गुण भक्ति पर आधारित है, जहाँ उनका राम दशरथ पुत्र न होकर निर्गुण राम के रूप में परिकल्प त है, जो उनके घट–घट में व्याप्त है। आत्म की शुद्धता ईश्वर की सर्वव्यापता में

विलीन है तथा उनकी भक्ति में संत–संगति को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। इसी के साथ वे समाज में धर्म, जाति–भेद, पाखंड तथा रूढ़ियों का विरोध करते हुए सार्वभौमिक मानवता की स्थापना का संदेश प्रदान करते हैं।

4. कबीर का काव्य जन–सामान्य की भाषा में रचा गया है, जिसमें समाज के सभी वर्गों को समविशष्ट रूप से दृष्टिगत रखा गया है, जिससे उनकी बात सीधा जनमानस तक पहुँची तथा समाज में चेतना का व्यापक प्रसार हुआ।

शोध का उद्देश्य

1. आधुनिक युग में कबीर की प्रासंगिकता पर गभीर विचार करना। वर्तमान परिवेश में, जब विश्व विभिन्न जातीय, धार्मिक तथा सांस्कृतिक संघर्षो से गुदर रहा है, तब कबीर का सार्वभौमिक संदेश लोक मंगल, सद्भावना तथा भाईचारे की भावना को सुस्थापित रखने हेतु अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है। इस शोध का उद्देश्य कबीरदास के मानवीय मूल्यों को आधुनिक सामाजिक संदर्भों से जोड़कर उनकी प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है।
2. सामाजिक विषमताओं के प्रति कबीर के दृष्टिकोण का विश्लेषण करना। विशेषकर जातिवाद, स्त्रीविमर्श, धार्मिक पाखंड, आर्थिक असमानता तथा सामंती मानसिकता के विरुद्ध कबीर ने अपनी काव्य दृष्टि के माध्यम से किस प्रकार सशक्त आवाज उठाई, इसका अध्ययन आवश्यक है।
3. इस शोध का मुख्य उद्देश्य कबीर की काव्य–दृष्टि का गहनता से विश्लेषण करना है। इसमें काव्य के समग्र एवं आलोचनात्मक

परिप्रेक्ष्य में व्याख्या करते हुए उनके विचारों का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

4. कबीर के काव्य में अंतर्निहित सुधारवादी चेतना को प्रकाशित करना। कबीर ने बाह्य आड़म्बरों से दूर रहकर आंतरिक साधना तथा आत्मज्ञान को उन्नति का सच्चा पथ बताया है। उन्होंने भक्ति, समता, मानवीयता, विवेक तथा प्रेम के माध्यम से समाज की कुरीतियों पर कठोर प्रहार किया, जो आज भी प्रेरणा का स्रोत है।
5. कबीर दास के काव्य में सन्निहित सामाजिक जागरूकता, सामाजिक न्याय तथा समानता के तत्वों का गहन अध्ययन तथा विवेचना करना। इसके माध्यम से उनके काव्य की समाजोन्मुखी प्रवृत्ति को स्पष्ट किया जाएगा।
6. उनकी कविताओं में धार्मिक भेदभाव, जातिवाद तथा सामाजिक असमानताओं के प्रति प्रतिरोधात्मक दृष्टिकोण का विश्लेषण करना, जिससे उनके काव्य की आधुनिक प्रासंगिकता को आरोपित किया जा सके।

शोध की नवीनता

उपलब्ध शोध सामग्री के आधार पर ''कबीर की काव्य दृष्टि और सामाजिक चेतना'' विषयक शोध की नवीनता आधुनिक संदर्भों में उनकी प्रासंगिकता की पुनर्व्याख्या में निहित है। यह अध्ययन भक्तिकालीन स्थापित विश्लेषणों से अतिक्रमित होकर समकालीन सामाजिक विमर्शों से एक सक्रमण से जुड़ता है।

कबीर के दोहों में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना को दलित विमर्श, स्त्री विमर्श तथा आधुनिक न्याय–आधारित विमर्शों के संदर्भ में समविशष्ट करना

शोध को नवीन आयाम प्रदान करता है, जहाँ जातिवाद, धार्मिक पाखंड तथा सामाजिक विषमता के विरुद्ध उनकी विद्रोही आवाज को वर्तमान सामाजिक आंदोलनों से सम्बद्ध करते हैं।3,8, पारंपरिक अध्ययन जहाँ प्रायः धार्मिक आध्यात्मिकता पर केंद्रित रहते हैं, वहां नवीन शोध सामाजिक सुधार की दृष्टि को वैज्ञानिक तथा संवैधानिक परिप्रेक्ष्य में विस्तार देते हैं।7, उदाहरणस्वरूप, कबीर के 'जै ते बामण–बामणी जाया' जैसे दोहे ब्राह्मणवादी श्रेष्ठता पर व्यंग्य के रूप में आधुनिक समता विमर्श में अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

यह अध्ययन मध्यकालीन विडंबनाओं को आधुनिक आडंबर–हीन समाज के आदर्श से सम्बद्ध करते हुए शोध की मौलिकता को सुस्थापित करता है। यह रूढ़िवादी व्याख्याओं से परे जाकर कबीर को एक सशक्त समाज–सुधारक के रूप में परिभाषित करता है।1,7, भक्ति आंदोलन के संदर्भ में उनकी काव्य दृष्टि को सामाजिक विद्रोह के रूप में पुनर्पाठ करना नवीन शोध की प्रमुख उपलब्धि है।5,8

शोध की आवश्यकता

शोध इसलिए आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि यह मानव जीवन को नवीन दिशा प्रदान करने के साथ–साथ ज्ञान के विस्तार में भी उल्लेखनीय वृद्धि करता है। शोध के विभिन्न लाभों में व्यवहारिक समस्याएँ, पूर्वग्रहों का निदान तथा उन्मूलन, वैकल्पिक नीतियों पर गहनता से विचार करना तथा उनके परिणामों का विश्लेषण शामिल हैं। यह ज्ञान के विविध आयमों को गहराई प्रदान करते हुए व्यक्ति के बौद्धिक विकास को सुस्थापित करता है तथा नवीन तकनीकों में दक्षता प्रदान करने में सहायक होता है।

कबीर की काव्य दृष्टि तथा सामाजिक चेतना पर शोध की आवश्यकता इसलिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि यह मध्यकालीन भक्ति काव्य को समकालीन सामाजिक विमर्शों से एकीकृत करने का कार्य करता है। यह अध्ययन वर्तमान समाज में व्याप्त असमानताओं, धार्मिक आडंबरों तथा जातिवादी भेदभाव की समझ को गहराई प्रदान करता है।1,3,

यह शोध कबीर को केवल संत कवि के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त समाज–सुधारक के रूप में स्थापित करता है, जो समकालीन विडंबनाओं के प्रति सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करता है।3, कबीर की सरल तथा प्रभावी वाणी को वैज्ञानिक–सामाजिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करना एक महत्वपूर्ण बौद्धिक आवश्यकता है, क्योंकि यह समाज परिवर्तन की प्रेरणा प्रदान करती है।1,2,

शोध का क्षेत्र

कबीर की काव्य दृष्टि और सामाजिक चेतना : शोध का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है, जिसमें उनके काव्य में राष्ट्र भक्ति, निर्गुण भक्ति धारा को समाज–सुधार के प्रभावी औजार के रूप में सुस्थापित किया गया है तथा समाज के प्रायः सभी वर्गों को समविशष्ट रूप से समाहित किया गया है।

- कबीर की कविता का मूल उद्देश्य।
- निर्गुण भक्ति की दार्शनिक अवधारणा।
- आत्मानुभूति तथा साधना का प्रभाव।
- सहज तथा लोक–मांगलीक दृष्टिकोण।
- समाज में व्याप्त असमानताओं का विश्लेषण।
- जाति–भेद तथा ऊँच–नीच की प्रवृत्तियों पर प्रहार।

- सामाजिक ढोंग तथा पाखंड का सशक्त विरोध।
- हिन्दू–मुस्लिम दोनों परंपराओं की आलोचनात्मक समीक्षा।
- बाह्य आडंबर के विरुद्ध कबीर का प्रतिरोधात्मक स्वर।
- सच्चे धर्म की दार्शनिक परिभाषा।
- मानव–मूल्यों की सुस्थापित स्थापना।
- प्रेम, करुणा तथा भाईचारे का मानवीय संदेश।
- समतामूलक समाज की अवधारणा।
- कबीर का सामाजिक क्रांतिकारी रूप।
- परंपरागत व्यवस्था से उनका टकराव।
- समाज–सुधार की गहनता से युक्त चेतना।
- तत्कालीन राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का विश्लेषण।
- भक्ति आंदोलन में कबीर की महत्वपूर्ण भूमिका।
- संत परंपरा में उनका विशिष्ट योगदान।

शोध की सीमायें

मैंने अपने शोध की सीमा को ध्यान में रखते हुए "कबीर की काव्य दृ ष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन" जैसे विशय पर शोध करते समय कुछ शोध की समय–सीमाएँ स्पष्ट करना बहुत आवश्यक होता है। जिसमें शोध केंद्रित और व्यवस्थित बनता है।शोध का केंद्र केवल कबीर की वाणी/साखी/सबद/रमैनी तक सीमित है। अन्य संत कवियों के साहित्य का उपयोग केवल तुलनात्मक संदर्भ के रूप में किया जाएगा।

- यह अध्ययन कबीर की सामाजिक चेतना के निम्न पक्षों तक ही सीमित रहेगा–
  - जाति–भेद विरोध
  - धार्मिक पाखंड की आलोचना
  - मानवतावाद और समता
  - सामाजिक सुधार की भावना

राजनीतिक या आर्थिक सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन इसमें शामिल नहीं होगा।

- शोध में मुख्यतः–
  - बीजक
  - कबीर ग्रंथावली
  - प्रमुख आलोचनात्मक ग्रंथ

शोध–पत्र और संदर्भ सामग्री का उपयोग किया जाएगा।कबीर की भाषा (सधुक्कड़ी/लोकभाषा) पर चर्चा की गयी है और काव्य शैली और सामाजिक संप्रेषण के संदर्भ में होगी।

कबीर की सामाजिक चेतना की आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता केवल निष्कर्ष के स्तर तक सीमित होगी, और शोध के अर्न्तगत लेखक द्वारा 15वीं शताब्दी के संत कबीरदास जी को अपने अध्ययन के केन्द्र में रखा है।

शोध प्रश्न

कबीर की काव्य दृष्टि और सामाजिक चेतना का अध्ययन विषय पर मैंने शोध के लिए निम्नलिखित प्रश्नों को तैयार किया हैं, जिसमें विश्लेषणात्मक, तुलनात्मक और मूल्यांकनात्मक स्तर के प्रश्न हैं।

1. कबीर की काव्य दृष्टि में सामाजिक चेतना का प्रमुख स्वरूप क्या है, और यह भक्ति आंदोलन के संदर्भ में किस प्रकार विशिष्ट है?
2. कबीर के दोहों में सामाजिक चेतना को व्यक्त करने वाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ कौन–कौन सी हैं?
3. कबीर के काव्य में स्त्री–पुरुष समानता और सामाजिक समरसता की अवधारणा का परीक्षण कीजिए।
4. कबीर की सामाजिक चेतना की तुलना तुलसीदास या सूरदास की काव्य दृष्टि से कीजिए।
5. कबीर के काव्य में निहित सामाजिक चेतना का आधुनिक दलित विमर्श या समता आंदोलनों से संबंध प्रतिपादित कीजिए।
6. कबीर की काव्य दृष्टि सामाजिक चेतना को समकालीन समाज की विषमताओं के संदर्भ में कितनी प्रासंगिक है? तर्कसंगत विश्लेषण सहित चर्चा कीजिए।

शोध विषय की पृष्ठभूमि–

भारतीय साहित्य में भक्ति आंदोलन एक ऐसी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्रांति के रूप में सामने आया जिसने समाज को दर्शन, भाषा, समाज व जातिगत रूप से बहुत प्रभावित किया। उस समय पर ऐसे बहुत से संत आए जिन्होंने धर्म की आड़ में फैले पाखंड व रूढ़ियों के विरूद्ध समाज को चेताया और जनजागरण किया। इन संतों में संत कबीरदास मुख्य हैं। जिन्होंने समाज को मनुष्यता का पाठ पढ़ाया।

उस युग (भक्तिकाल) को सामाजिक, धार्मिक व राजनीतिक दृष्टि से संक्रमण का दौर कहा जाता है। जहां एक तरफ लगातार होते विदेशी आक्रमण और इस्लाम का भारत में प्रवेश हो रहा था, वहीं दूसरी तरफ

लोगों में पाखंड, कर्मकांड और जातिव्यवस्था चरम पर थी। जनता में घोर निराशा, भय व भ्रम फैला हुआ था। ऐसे समय में कबीर ने निर्भीक होकर इन सभी आडम्बरों के विरूद्ध तीखे प्रहार किए एवं सभी के कल्याण के लिए सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय का मार्ग प्रशस्त किया। वे कहते भी है–

"हिंदू कहे मोहि राम प्यारा, तुर्क कहे रहमाना।

आपस में दोऊ लड़ी–लड़ी मुए, मरम न काहू जाना।।"

कबीर ने मनुष्यता को सबसे ऊपर रखा है और अपने वचनों द्वारा जनमानस को सामाजिक समानता, धार्मिक सहिष्णुता और न्यायपूर्ण व्यवस्था स्थापित करने का संदेश दिया। उन्होंने किसी धर्म, जाति या वर्णव्यवस्था को केन्द्र में नहीं रखा। कबीर ने समाज में फैले पाखंड, धर्मान्धता, असमानताओं के विरूद्ध अपनी रचनाओं को माध्यम बनाया। उनका साहित्य सामाजिक चेतना का उत्तम उदाहरण रहा है, जहां उन्होंने बाह्य आडंबरों, असमानता का विरोध कर सद्भावना व समानता की भावना पर जोर दिया। समाज में लोक कल्याण की भावना बढ़े, इस पर कार्य किया। सामान्य तौर पर भी उनके दोहे हर किसी की जुबान पर देखे जा सकते हैं जिनका उद्देश्य यही रहा है कि लोग सद्कर्मों में लगें।

कबीर की रचनाएं जनमानस की भाषा में रची गईं ताकि हर वर्ग के लोगों तक उनका संदेश पहुंचे। तीव्र सामाजिक चेतना, वैचारिक दृढ़ता और आध्यात्मिक ऊँचाई के आधार पर कबीर उनके समकालीन अन्य संत कवियों की अपेक्षा अत्यंत विशिष्ट रहे हैं। धार्मिक, सांप्रदायिक कट्टरता व जातिगत भेदभाव वर्तमान समय में भी विद्यमान है इसलिए कबीर के दृष्टिकोण और उनकी वाणी को आज के परिपेक्ष में फिर से समझना व प्रासंगिक बनाना

अति आवश्यक हो गया है। कबीर की दार्शनिक दृष्टि अत्यंत व्यापक व गहन रही है। उनका काव्य आज के परिपेक्ष में एकदम सटीक है जिसमें अनेक भावों का समावेश देखने को मिलता है। समाज सुधार व मानवतावाद के लिए कबीर उस समय भी सबसे आगे खड़े दिखाई पड़ते हैं। उन्होंने सुनी सुनाई बातों पर नहीं बल्कि अपने अनुभवों के आधार पर मत दिए एवं वैष्णव, सूफी व नाथपंथ को ध्यान में रखते हुए जीव/ब्रह्म के विषय में अपना सिद्धान्त दिया।

कबीर की भाषा बहुत सीधी एवं सरल रही है ताकि सामान्य लोगों तक पहुंच बनाने में आसानी रहे। वे कठिन शब्दों या अलंकारों का प्रयोग नहीं करते थे। उनकी वाणी का असर साधारण लोगों पर भी गहरा पड़ता था क्योंकि वे लोकभाषा में लिखते थे। कबीर ने इस प्रकार के उदाहरण प्रयोग किये जो लोगों की दिनचर्या से संबंधित रहते थे। इस कारण उनकी बातों से लोग जल्दी प्रभावित होते थे। कबीर की वाणी में सत्य, प्रेम व करूणा का अंश दिखाई देता है। कबीर ने यह समझाया है कि सच्चा धर्म किसी दिखावे या बाहरी कर्मकाण्ड में नहीं बल्कि मनुष्य के अच्छे आचरण या सच्चे व्यवहार में है। यही कारण है कि उनकी बातें आज भी लोगों का मार्गदर्शन करती हैं।

कबीर की कविता का आधार अनुभव था। वे साधारण जीवन जीने के पक्ष में थे और अपनी साधना के आधार पर उन्होने सत्य को समझा है। कबीर का यह मानना था कि गुरू के बिना कोई व्यक्ति सही दिशा प्राप्त नहीं कर सकता। गुरू के पास एक अनोखी शक्ति होती है जो अज्ञान के अंधकार से निकालने की क्षमता रखती है। कबीर के लिए सबसे सच्चा धर्म केवल ईश्वर की भक्ति एवं मानवता की सेवा ही था। उन्होंने ही कहा है

कि पूजा–पाठ तीर्थयात्रा और बाहरी आडम्बर से ईश्वर नहीं मिलते। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए अच्छे कर्म व सच्चे मन से भक्ति करनी होती है।

कबीर की रचनाएँ हिंदी साहित्य में बहुत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। उनका साहित्य केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से भी बहुत उपयोगी है। उन्होंने अपने समय की बुराइयों, पाखंड, जाति–पाति और अंधविश्वास का कड़ा विरोध किया। उन्होंने समाज में समानता, भाईचारे व सत्यता का संदेश दिया। उनकी वाणी में स्पष्ट झलकता है कि वे सिर्फ कवि नहीं बल्कि समाज सुधारक भी थे। उनकी भाषा सीधी, सरल व स्पष्ट थी इसलिए कबीर का साहित्य आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय में था। डॉ रामविलास शर्मा और नामवर सिंह जैसे विद्वानों ने भी कबीर की रचनाओं की महत्ता स्वीकार की है। उनका मानना है कि कबीर ने समाज को जागरूक करने और इंसानियत को सबसे बड़ा धर्म बताने का कार्य किया है।

कबीर पर अध्ययन करने वाले विद्वानों में डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह, लिंडा हेस, धर्मवीर भारती जैसे विद्वान शामिल हैं। जिन्होंने उनके समस्त साहित्य का सामाजिक व सांस्कृतिक दृष्टि से विवेचन किया है। किन्तु अभी भी आवश्यकता है कि "**कबीर की काव्य–दृष्टि और उनकी सामाजिक चेतना"** पर गहन अध्ययन किया जाए जैसे कुछ मुख्य बिंदुओं पर गहराई से अध्ययन किया जा सकता है–

- कबीर के काव्य की सामाजिक चेतना के बिंदुओं का अध्ययन कर विश्लेषण करना एवं उनके साहित्य में निहित समानता पक्ष, अस्पृश्यता, सामाजिक न्याय एवं जागरूकता जैसे तत्वों को उजागर करना।

- कबीर के समग्र काव्य में उनके विचारों एवं समाज पर प्रभाव का मूल्यांकन करना।
- कबीर का जातिवाद, धार्मिक कट्टरता एवं पाखंडों के विरूद्ध दृष्टिकोण का विवेचन करना।
- कबीर के काव्य में सामाजिक सुधारक के दृष्टिकोण का विवेचन करना।
- कबीर के काव्य में निहित सामाजिक व दार्शनिक पक्ष का आधुनिक परिपेक्ष में अध्ययन करना।

इस प्रकार इस शोध का प्रमुख उद्देश्य वर्तमान परिपेक्ष में कबीर के पूर्ण साहित्य में सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों का सम्यक् मूल्यांकन करना है।

कबीर का जीवन–परिचयः–

कबीर हिन्दी भक्ति काव्य के प्रथम एवं अत्यंत महत्वपूर्ण क्रांतिकारी कवि के रूप में स्वीकार किए जाते हैं। वे मध्यकालीन भारतीय साहित्य की संत परंपरा के एक प्रख्यात संत, विचारक, एवं समाज सुधारक थे, जिन्होंने अपनी गहन चेतना और नैतिक दृष्टि से समाज को गहराई तक प्रभावित किया। उनकी वाणी की सरलता, साक्षात्कारिता एवं व्यावहारिक गहनाई उन्हें समसामयिक संतों से विशिष्ट बनाती है। यह सिद्धान्त विस्तार से स्वीकार किया जाता है कि इतिहास में कोई भी घटना आकस्मिक रूप से उत्पन्न नहीं होती, अपितु उसके पीछे निहित कारणों का सुसंगत आधार अवश्य मिलता है। इसी परिप्रेक्ष्य में कबीर भी अपने युग की मान्यताओं, सामाजिक संरचनाओं एवं धार्मिक परंपराओं से संबद्ध रहे, किन्तु उन्होंने उनका आलोचनात्मक मूल्यांकन भी किया।

उस समय के सामाजिक परिदश्य में धर्म के ठेकेदारों, अर्थात् पंडितों और मुल्लाओं का व्यापक प्रभुत्व विद्यमान था, जिसे कबीर ने सामान्य जनमानस के लिए बंधनस्वरूप अनुभव किया। इसीलिए उन्होंने कुप्रथाओं, रूढ़िवादिता एवं आडम्बर के विरूद्ध सशक्त आवाज उठाई और उसमें उल्लेखनीय सफलता भी प्राप्त की, यद्यपि इस प्रक्रिया में उन्हें तीखी आलोचना और विरोध का भी सामना करना पड़ा। कबीर ने जाति–पाति, धार्मिक पाखंड एवं समाज में व्याप्त असामानता के विरूद्ध दढ़ता से अपने विचार व्यक्त किए, जो बौद्ध विचारधारा के समानतामूलक सिद्धांतों से साम्य रखते हैं।कबीर का जीवन उस युग की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का एक प्रभावी दस्तावेज प्रतीत होता है, क्योंकि उनके साहित्य के माध्यम से उस समय व्याप्त कुरूतियों का आकलेन एवं उनके समाधान के प्रयास दोनों स्पष्ट होते हैं। उनके जन्म के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं, किन्तु अधिकांश विद्वान् 1398 ई० के आसपास काशी में उनका जन्म स्वीकार करते हैं। उन्होंने पूजा–पाठ, ढ़ोंग, आडंबर एवं अंधविश्वास का प्रखर विरोध किया और समाज में जाति एवं संस्कारगत बंधनों से उपरे उठकर मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

कबीर हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल से संबंधित हैं, जहाँ वे निर्गुण शाखा के ज्ञानमार्गी प्रवृत्ति के प्रतिनिधि कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। उनकी कविताओं का समन्वय सिक्ख धर्म के प्रमुख ग्रंथ गुरूग्रंथ साहिब में भी देखने को मिलता है, जो उनकी विचारधारा की व्यापक स्वीकार्यता का प्रमाण है। कबीर के जीवन के प्रत्यक्ष ऐतिहासिक साक्ष्य सीमात हैं, अतः विद्वानों ने किंवदंतियों, मान्यताओं एवं परंपरागत स्रोतों के आधार पर ही उनके जीवन का आलेखन किया है।कबीर ने अपने जीवन के व्यावहारिक अनुभवों एवं लोक शिक्षा को आधार बनाकर एक ऐसे दर्शन की स्थापना

की, जो न केवल अध्यात्मिक है, अपितु सामाजिक सुधार और मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का भी प्रबल माध्यम है।

इनके अनुयायियों द्वारा कबीर पंथ की स्थापना की गई, जिसमें उन्हें अवतार स्वरूप में स्वीकार किया जाता है। कबीर ने मूर्तिपूजा का सशक्त एवं स्पष्ट विरोध करते हुए समाज में व्याप्त आडम्बर, रूढ़िवादिता एवं पाखंड के प्रति जनमानस को जागरूक किया तथा उन्हें सद्मार्ग की ओर प्रेरित किया। आज भी उनके दोहे समाज में चेतना एवं जीवन दष्टि का संकल्प उत्पन्न करते हैं। उन्होंने अपने समय में फैली कुरूतियों और कुप्रथाओं के उन्मूलन हेतु विस्तत प्रयास किए और जीवन के अंतिम क्षण तक इसी कार्य में समर्पित रहे।काशी एवं मगहर के संदर्भ में प्रचलित अंधविश्वासों का उल्लेख विशेष रूप से किया जाता है, जिसमें यह मान्यता थी कि काशी में देह त्याग करने वाला व्यक्ति स्वर्ग प्राप्त करता है, जबकि मगहर में मत्यु को नरक गमन का कारण माना जाता था। कबीर ने इस अवैज्ञानिक धारणा का खंडन करने के लिए अपना पूर्ण जीवन काशी में व्यतीत करने के पश्चात् अंतिम समय में मगहर जाकर देह त्याग किया। सन् 1518 ई० में उनका निर्धन हुआ, जो उनकी विचारात्मक निर्भीकता एवं समाज सुधारक दष्टि का प्रबल प्रमाण है।

हिंदुओं के मतानुसार कबीर के गुरू रामानन्द जी थे, जबकि मुस्लिम परंपरा में शेख तकी को उनका गुरू स्वीकार किया जाता है। मगहर में उनकी समाधि और मजार दोनों का निर्माण किया गया है, जो उनकी समन्वयवादी दष्टि और दोनों धर्म समुदायों के प्रति उनकी स्वीकार्यता का प्रतीक है। उनकी मत्यु से संबंधित एक प्रसिद्ध घटना का उल्लेख भी मिलता है, जिसमें उनके शव के अंतिम संस्कार को लेकर हिन्दू और मुस्लिम समुदायों में विवाद उत्पन्न हो गया था। दोनों ही समुदाय

अपने–अपने रिवाजों के अनुसार संस्कार करना चाहते थे, किन्तु ऐसी परिस्थिति में एक समझदार व्यक्ति द्वारा उनके शव के स्थान पर फूल रख दिए गए, जिन्हें बाद में दोनों समुदायों में विभाजित कर दिया गया। हिंदुओं ने उन फूलों का विसर्जन किया, जबकि मुस्लिमानों ने उन्हें दफना दिया, इस प्रकार यह घटना उनकी समन्वयवादी विचारधारा का प्रतीक बन गई।

कबीर के जन्म के संदर्भ में यह मान्यता प्रचलित है कि उनका जन्म काशी(वर्तमान वाराणसी) में एक मुस्लिम जुलाहा परिवार में हुआ था। कुछ साक्ष्यों के आधार पर यह भी कहा जाता है कि नीरू एवं नीमा नाम के जुलाहा दंपत्ति को ये ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को लहरतारा तालाब के किनारे प्राप्त हुए थे, जिसे आज भी कबीर के प्रकट दिवस के रूप में मनाया जाता है। अन्य मतों के अनुसार वे जन्म से ब्राह्मण थे, जिन्हें जन्म के तुरंत बाद एक विधवा माँ द्वारा समाज के भय से त्याग दिया गया और पश्चात् नीरू एवं नीमा द्वारा उनका पालन–पोषण किया गया (श्रीनिवास शुक्ल, भक्ति आंदोलन और संत साहित्य, 1982)।

कबीर ने कभी औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की, किन्तु उनकी रचनाओं एवं विचारों से यह स्पष्ट होता है कि वे अत्यंत ज्ञानी, विवेकशील एवं लोक–चेतना से परिपूर्ण व्यक्ति थे। उनकी भाषा, चिंतनशक्ति और काव्य दष्टि में गहन दर्शन और तत्वज्ञान का प्रभाव स्पष्ट रूप से दष्टिगोचर होता है।कबीर के परिवार में उनके माता–पिता, पत्नी एवं एक पुत्र एवं पुत्री का उल्लेख मिलता है। इनके माता–पिता का नाम नीरू एवं नीमा था। कबीर के विषय में आलोचकों के मतों में भिन्नता पाई जाती है, जिसमें कुछ विद्वान् उनके दो विवाह होने का उल्लेख करते हैं, जिनमें एक पत्नी का नाम लोई तथा दूसरी का नाम धनिया बताया गया है, जिसका उल्लेख निम्न पंक्ति में भी प्राप्त होता है–

मेरी बहुरीआ को धनीया नाउ।।

ले राखिओ राम जनीआ नाउ।।

इनके पुत्र का नाम कमाल तथा पुत्री का नाम कमाली बताया जाता है, जो संभवतः उनकी प्रथम पत्नी से उत्पन्न हुए थे। कबीर का पालन–पोषण जिस परिवार में हुआ, वहाँ का प्रमुख व्यवसाय कपड़ा बुनना था, अतः उन्होंने भी इसी व्यवसाय को अपनी जीविका का आधार बनाया। जुलाहा समुदाय का प्रमुख कार्य कपड़ा बुनकर उसे विक्रय करना था, जो कबीर के जीवन में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनके काव्य में कपड़ा बुनने की प्रक्रिया के अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि उन्हें इस कार्य का व्यावहारिक एवं गहन ज्ञान था। आचार्य शुक्ल ने भी इस संदर्भ में उल्लेख किया है–

जति जुलाहा मति का धीर।

सहजि सहजि गुन रमैं कबीर।।

कबीर की मृत्यु तिथि के संदर्भ में विद्वानों में एक रूप मत का अभाव देखने को मिलता है, यद्यपि डॉ० रतन सिंह के अनुसार उनका निर्धन सन् 1528 ई० के आसपास लगभग 120 वर्ष की आयु में हुआ माना जाता है। कबीर का व्यक्तित्व अत्यंत स्वतंत्र, निर्भीक एवं विचारोन्मुख था। वे किसी भी प्रकार के सामाजिक बंधनों को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं थे, अपितु एक मस्त एवं स्वतंत्र विचारधारा के व्यक्ति थे। उन्होंने समाज में प्रचलित रूढ़िवादिता और आडम्बरों का अस्वीकार किया और अपने आंतरिक अनुभव के आधार पर ही जीवन पथ का चयन किया। उनके लिए समाज के हित में यह जो भी उचित प्रतीत होता, उसे ही उन्होंने स्वीकार किया, न कि किसी प्रकार का समझौता।

कबीर ने औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं की, किन्तु इसके बावजूद उनका ज्ञान उच्च स्तर का था। उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान पर निर्भर न रहते हुए व्यवहारिक अनुभवों के आधार पर ज्ञान अर्जित किया। अपने जीवन अनुभवों से ही उन्होंने सीख प्राप्त की, जिसका प्रतिनिबं उनके दोहों में स्पष्ट होता है–

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।।

एकै आशिर पीव का, पढ़ै सो पंडित होइ।।

कबीर ने अपने विचारों एवं उपदेशों को व्यापक रूप से जनमानस तक पहुंचाने के लिए लोकभाषा का सहज चयन किया। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, कबीर जैसा सुसंस्कत व्यक्ति ही परंपरागत पुस्तकीय ज्ञान की व्यवहारिक दष्टि से समीक्षा कर सकता है, क्योंकि वे वाणी के अद्वितीय शक्ति के धनी थे। उन्होंने पुस्तकीय ज्ञान को प्राथमिकता न देकर जनभाषा में अपने विचारों को प्रस्तुत किया और संस्कृत की परिशुद्ध परंपरा को चुनौती दी।

कबीर के गुरू रामानन्द जी थे। यह प्रचलित है कि रामानन्द जी नीची जाति के लोगों को शिष्य नहीं बनाते थे, किन्तु कबीर उनके शिष्य बनने के लिए उत्सुक थे। इसी प्रयोजन से उन्होंने एक युक्ति अपनाई, जिसके अनुसार वे रामानन्द जी के दैनिक स्नान स्थल घाट पर पहुंचकर लेट गए और जब रामानन्द जी वहाँ आए, तो उनका पैर कबीर से टकराया, जिससे उनके मुख से 'राम' नाम का उच्चारण हुआ। इसी घटना को गुरूदीक्षा के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

रामानन्द के शिष्य बनने के पश्चात् कबीर भक्ति के मार्ग पर अग्रसर हुए, किन्तु उनकी भक्ति संकीर्ण धार्मिक परिधि में सीमित नहीं थी, अपितु

वह समाज कल्याण पर आधारित एक व्यापक मानवीय भक्ति थी। उनके अनुसार ईश्वर निराकार, निर्गुण और सर्वव्यापी है, जिसे प्रेम एवं भक्ति के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। कबीर ने जीवन के विभिन्न आयमों का गहन अनुभव किया और उन्हें सहज, सुलभ एवं प्रभावी वाणी में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया।

कबीर का जीवन साधना, आत्मानुभूति एवं समाज सुधार के कार्यों को समर्पित था। उन्होंने तत्कालीन धार्मिक पाखंड, मूर्तिपूजा, कर्मकांड एवं जातिवाद का प्रखर विरोध किया। उनका जीवन समाज सुधार और अंधविश्वासों के विरूद्ध संघर्ष का प्रतीक माना जा सकता है। उन्होंने दोनों धार्मिक समुदायों की संकीर्णता एवं पाखंड का आलोचनात्मक विश्लेषण किया और बताया कि मनुष्य व्यर्थ ही इनमें उलझा हुआ है।जातिवाद को उन्होंने सबसे नीच एवं समाज के लिए हानिकारक बताया और मानवता को सबसे उच्च धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। वे निर्गुण भक्ति धारा के प्रवर्तकों में अग्रणी माने जाते हैं। उनके अनुसार ईश्वर एक निराकार, निर्गुण एवं सर्वव्यापी सत्ता है, जो प्रत्येक मनुष्य के अन्तःकरण में स्थित है और प्रेम एवं भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। इसी विचार को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं–

"माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डार दे, मन का मनका फेर।।"

(बीजक, साखी संकलन)

इस दोहे में आंतरिक साधना एवं धार्मिक आडंबर के विरोध की दृष्टि स्पष्ट होती है। कबीर के अनुसार मनुष्य हाथ में माला लेकर जाप करता रहता है, किन्तु उसका मन विकारों से ग्रसित रहता है। लोभ, स्वार्थ एवं

अहंकार उसे घेरे रहते हैं, अतः जब तक मन शुद्ध न हो, तब तक बाहरी साधना से कोई वास्तविक लाभ नहीं हो सकता।

कबीर इस बात पर बल देते हैं कि मनुष्य को बाहरी आडंबर जैसे माला फेरना, व्रत रखना या तीर्थ यात्रा करना आदि पर आश्रित नहीं होना चाहिए, क्योंकि ये सभी मात्र मोक्ष की आशा को प्रदर्शित करते हैं। यदि मन में द्वेष, ईर्ष्या, लालच और काम जैसे विकार विद्यमान हैं, तो मन को शांति प्राप्त नहीं हो सकती। अतः आवश्यक है कि मनुष्य अपने आंतरिक विचारों एवं भावों की शुद्धि पर ध्यान दे।

कबीर ने हिन्दू व मुस्लिम दोनों ही धार्मिक व्यवस्थाओं की तीक्ष्ण एवं सार्थक आलोचना की, किन्तु यह पूर्णतः स्पष्ट है कि वे किसी भी धर्म के विरूद्ध नहीं थे, अपितु उनका प्रतिरोध संकीर्णता, रूढ़िवादिता और ढ़ोंग जैसे विरोधात्मक तत्वों के विरूद्ध था। उनके उपदेशों एवं विचारों में गहरी सामाजिक चेतना, मानवीय करूणा एवं संवेदशीलता का स्पष्ट प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। कबीर ने समाज में विद्यमान कुरूतियों के उन्मूलन हेतु प्रभावी प्रयास किए तथा जनमानस की चेतना को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे एक सच्चे संत के रूप में प्रतिष्ठित थे, जो मानव को सत्य, सदाचार और भलाई के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करते रहे।

कबीर का जन्म एक जुलाहा परिवार में हुआ था, इसलिए वे गरीब एवं पीड़ित वर्ग की परिस्थितियों एवं संघर्षों से गहराई से परिचित थे। उनका यह दृष्टिकोण था कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसके कर्म के आधार पर निर्धारित होती है, न कि उसके जन्म, नाम या जातीय प्रतिष्ठान से। उन्होंने अंधविश्वास, झूठी मान्यताओं तथा बाहरी आडम्बरों का प्रतिरोध

किया और यह प्रतिपादित किया कि जो सत्य मन के अन्तःकरण में स्थित है, उसे बाहरी मन्दिर या मस्जिद में खोजना निष्फल है।

कबीर का देहांत मगहर (उत्तर प्रदेश) में हुआ, जो उस युग में अपवित्र माना जाता था। इस स्थान पर देह त्याग कर उन्होंने प्रचलित सामाजिक धारणाओं को सीधी चुनौती प्रदान की। आज भी मगहर में उनकी समाधि और मजार दोनों ही स्थित हैं, जो उनकी समन्वयकारी दृष्टि और धार्मिक समानता के प्रतीक हैं। कबीर का जीवन सामाजिक चेतना और अध्यात्मिक साधना के समन्वय की एक सफल प्रयोगशाला रहा है। उन्होंने किसी एक धर्म या संप्रदाय का प्रचार–प्रसार नहीं किया, अपितु इंसानियत को सर्वप्रथम स्थान दिया। इसीलिए कबीर की प्रासंगिकता वर्तमान युग में भी अत्यधिक महत्वपूर्ण बनी हुई है।

कबीर के विषय में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उचित ही उल्लेख किया है कि "कबीर सिर से पैर तक मस्तमौला थे, जो वर्तमान में जीते हुए भविष्य की चिन्ता से मुक्त रहते थे।" कबीर न केवल एक महान संत और कवि थे, बल्कि सामाजिक क्रांतिकारी चेतना के प्रतिनिधि भी थे। उनका जीवन एक स्पष्ट संदेश प्रदान करता है– सरल जीवन, गहन चिंतन और मानवीय मूल्यों का अनुसरण।

उनकी विचारधारा में समभाव, सदाचार और सद्भाव का सुसंघटित समन्वय दष्टिगोचर होता है। आज के परिप्रेक्ष्य में भी उनकी विचारधारा मानव जीवन को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान करने में सक्षम है। कबीर ने अपनी अनुभूति के आधार पर समाज का गहन अध्ययन करते हुए उसके दुर्बल पक्षों का विश्लेषण किया और एक आदर्श समाज की सुसंघटित रूपरेखा प्रस्तुत की। उन्होंने प्रत्येक तत्व का गहराई से अध्ययन कर उसे पैनी दष्टि से समझा।

कबीर की विचारधारा में उनका समस्त साहित्य निहित है, क्योंकि उनकी जीवन दष्टि और काव्य दष्टि में पूर्ण एकता मिलती है। उनके साहित्य में जनमानस की पीड़ा एवं उनके अधिकारों की प्रतिभूति प्रमुख रूप से अभिव्यक्त होती है। यदि उनके अध्यात्म पक्ष का विश्लेषण किया जाए तो उसमें माया, ब्रह्म, जीव और जगत जैसे गहन दार्शनिक तत्वों का समावेश मिलता है। उन्होंने आत्मा को संसार के जंजाल से मुक्त करने की आवश्यकता पर विशेष बल दिया।

कबीर के अनुसार मानव का सर्वप्रथम धर्म मानवता है, जिसमें प्रेम, समानता और सत्य का समावेश हो। इस दृष्टि से उन्हें एक क्रांतिकारी कवि के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। उनका व्यक्तित्व और काव्य उस युग की सामाजिक विसंगतियों एवं धार्मिक पाखंडों के विरूद्ध एक प्रभावी अभिव्यक्ति प्रस्तुत करता है। उनके समय में समाज ऊँच–नीच, जात–पाँत, बाह्याचार और कर्मकाण्डों से ग्रसित था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही संप्रदायों में खोखले आडम्बर एवं रूढ़ियाँ गहराई तक जड़ें जमा चुकी थीं। इन परिस्थितियों में कबीर ने अपनी निर्भीक वाणी से जनमानस को जाग्रत करने का कार्य किया।

उन्होंने धर्म को बाहरी आडम्बरों से मुक्त करते हुए उसे सत्य, प्रेम, समानता और मानवता के सिद्धांतों पर आधारित किया। उनके लिए सच्चा धर्म वही था जिसमें मनुष्य का हृदय पवित्र हो और उसका आचरण नैतिक मूल्यों से युक्त हो। कबीर ने न केवल समाज की कुरूतियों पर तीक्ष्ण प्रहार किया, बल्कि मानव मात्र को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास भी किया।

कबीर ने जीवन की सफलता हेतु गुरूकपा को विशेष महत्व प्रदान किया। उनका मत था कि गुरू की कपा से ही शिष्य के जीवन में वास्तविक उन्नति संभव होती है। इसीलिए उन्होंने रामानन्द जी को अपना

गुरू बनाने के लिए प्रबल प्रयास किए और अन्त में उन्हें गुरू के रूप में स्वीकार किया।

उनकी वाणी में जातीय समानता, सामाजिक समानता और मानव कल्याण की चेतना स्पष्ट रूप से प्रतिबिंबित होती है। यही कारण है कि कबीर केवल एक कवि नहीं, बल्कि एक प्रभावी समाज सुधारक और संत के रूप में भी आदरणीय हैं। उनका काव्य उस युग की आवश्यकता का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें विभाजित और बिखरे हुए समाज को एक नयी दृष्टि, एक नयी चेतना और एक नवीन शक्ति प्रदान की गई।

शोध की आवश्यकता एवं उद्देश्य

संत कबीर का साहित्य केवल मध्यकालीन भक्ति आंदोलन की अमूल्य धरोहर मात्र नहीं, बल्कि समसामयिक परिपेक्ष्य में भी सामाजिक, धार्मिक तथा दार्शनिक दष्टि से अत्यंत प्रासंगिक एवं प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है। जिस ऐतिहासिक काल में कबीर का अविभार हुआ, वह विभिन्न मतभेदों, सामाजिक विघटनों, धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास तथा भेदभावापर्ण प्रवत्तियों से आच्छादित था। यदि वर्तमान परिदृश्य का विश्लेषण किया जाए तो वही समस्याएं आज भी विभिन्न रूपों में विद्यमान दिखाई देती हैं। धर्म के नाम पर संघर्ष, सामाजिक विभाजन, मानवीय मूल्यों का पतन तथा समुदायों के मध्य टकराव जैसी परिस्थितियाँ आज भी सामने चुनौती के रूप में उपस्थित हैं। अतः कबीर के विचार केवल ऐतिहासिक संदर्भ तक सीमित न रहकर सामाजिक घोषणा–पत्र के समान प्रतीत होते हैं, जो समाज को दिशा प्रदान करने में सक्षम हैं।

कबीर के चिंतन को किसी एक विशिष्ट दार्शनिक परंपरा या मत के अंतर्गत बांधा नहीं जा सकता। वे इस तथ्य से पूर्णतः निस्स्पृह थे कि उनके

विचार शास्त्रीय मान्यताओं के अनुकूल हैं या नहीं। उनका व्यक्तित्व आडंबर–विरोधी था तथा वे पंडितों एवं मुल्लाओं की कुपद्धतियों को समझते हुए उनसे दूरी बनाए रखते थे। कुछ विद्वान उन्हें अद्वैतवादी मानते हैं, तो कुछ उन्हें नाथपंथी परंपरा से जुड़ा मानने का प्रयास करते हैं, परन्तु वास्तविकता यह है कि उनका मुख्य विचार मानव समाज में समानता, प्रेम, करूणा तथा दया की प्रतिस्थापना करना था।

यद्यपि कबीर एक सामाजिक सुधारक के रूप में परिचयायित होते हैं, तथापि उन्होंने किसी नवीन धर्म या संप्रदाय की स्थापना का समर्थन नहीं किया। वे ऐसे समाज की कल्पना करते थे जहाँ हिंदू–मुस्लिम, पूजा–नमाज, पंडित–मुल्ला जैसे विभाजन न हों, बल्कि केवल शुद्ध मानवता का अस्तित्व हो। उनके समकालीन अन्य संतों ने भी इस दिशा में प्रयास किए, किन्तु जिस निर्भीकता से कबीर ने जाति एवं धर्म के ठेकेदारों का सामना किया, वह अपसरर्ण है। इसी कारण उन्हें अत्यंत प्रभावोत्पादक एवं आधुनिक दृष्टिकोण से युक्त संत के रूप में मान्यता मिली है। उन्होंने प्रचलित धार्मिक आडंबरों एवं पाखंड़ों का विरोध करते हुए मानवता पर आधारित धर्म की नींव रखने का साहस किया।

इस संदर्भ में विद्वानों का मत है कि हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी व्यक्तित्व दुर्लभ है। उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों से उत्पन्न सामाजिक विषमताओं के उन्मूलन का साहसी प्रयास किया एवं सभी प्रकार के पाखंड़ों पर निर्भीक प्रहार किया। उन्होंने तत्कालीन शासकों एवं उच्च वर्ग को भी अपने विचारों से चुनौती दी, जिससे भौतिक वैभव पर आधारित उनके मिथ्या अभिमान का खंडन हुआ।उनकी काव्य–दष्टि, जिसमें उनके विचार, दर्शन तथा सामाजिक चेतना का समन्वय है, केवल साहित्यिक दष्टि से ही नहीं, बल्कि सामाजिक

एवं सांस्कतिक दष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। साथ ही उनके विचारों का मूल्यांकन वर्तमान धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक एवं मानवतावादी समाज के संदर्भ में भी आवश्यक है, जिससे समसामयिक समस्याओं के समाधान के संकेत प्राप्त किए जा सके।

कबीर के काव्य में सामाजिक सुधार के स्पष्ट संकेत परिलक्षित होते हैं, जिन्हें पुनः व्याख्यायित कर वर्तमान संदर्भ में सार्थक बनाया जा सकता है। उनके विचार पाखंड़, जातिवाद, सामाजिक असमानता तथा धार्मिक कट्टरता के विरूद्ध एक सशक्त स्वर प्रस्तुत करते हैं, जो आज विशेष रूप से आवश्यक है। उन्होंने प्रतिपादित किया कि वास्तविक धर्म बाह्य आडंबरों में नहीं, बल्कि आन्तरिक शुद्धता, सत्य तथा मानवीय आचरण में निहित है। उन्होंने सदैव प्रेम, सद्भावना एवं मानवता का संदेश दिया तथा सामाजिक अन्याय एवं शोषण के विरूद्ध आवाज उठाई।

उन्होंने यह सिद्ध किया कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी जाति या वंश में नहीं, बल्कि उसके कर्मों में निहित होती है। वर्तमान समय में जबकि जातिवाद, स्वार्थ, लालच तथा सामाजिक विभाजन गहराई से व्याप्त हैं, तब कबीर की वाणी और अधिक प्रासंगिक हो जाती है। आज भी धर्म, जाति एवं वर्ग की दीवारें समाज को विभाजित कर रही हैं, एवं ऐसे समय में कबीर का सार्वभौमिक संदेशकृमानवता को सर्वोपरि मान्यता देनाकृविशेष महत्व रखता है।

विज्ञान एवं तकनीकी प्रगति के बावजूद मनुष्य आज भी नैतिक एवं सामाजिक स्तर पर विभाजित है। ऐसी परिस्थिति में कबीर की शिक्षाएं न केवल मार्गदर्शक हैं, बल्कि एक समानतामूलक एवं मानवीय समाज के निर्माण हेतु प्रेरणास्त्रोत भी हैं। अतः यह स्पष्ट है कि कबीर के विचार समय

की सीमाओं से परे हैं और उनकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही प्रबल है जितनी उनके युग में थी।

हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर के विषय में यह स्पष्ट करते हैं कि "वे मुसलमान होकर भी सच्चे मुसलमान नहीं थे, हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वे साधू होकर भी योगी नहीं थे तथा वैष्णव होकर भी केवल वैष्व नहीं रहे। वे किसी एक संप्रदाय या धर्म के सीमाक्षेत्र में आबद्ध नहीं थे, बल्कि उन्हें ईश्वर द्वारा एक विशेष एवं अनोंखा व्यक्तित्व प्रदान किया गया था।" इस कथन से यह प्रतीत होता है कि कबीर का व्यक्तित्व परंपरागत धार्मिक परिचयों से परे एक सार्वभौमिक मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है।वर्तमान समय में समाज धर्म, जाति, संप्रदाय तथा राजनीति के आधार पर विभाजित दिखाई देता है। प्रतिदिवस दंगे–फसाद, नफरत तथा हिंसा की घटनाएँ सामाजिक परिदृश्य को विषैल बना रही हैं। ऐसे परिवेश में कबीर की शिक्षाएँ अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होती हैं। उन्होंने प्रतिपादित किया कि–

हिंदू–मूसलमान के मध्य भेदभाव करना पूर्णतः व्यर्थ है।वास्तविक धर्म प्रेम, करूणा तथा सत्य पर आधारित है। बाह्य पूजा–पाठ की अपेक्षा सच्चा आचरण अधिक महत्वपूर्ण है। यदि मानव जीवन में इन सिद्धान्तों को आत्मसात किया जाए, तो निश्चित रूप से समाज में सामंजस्य, भाईचारे एवं साहचार्य की भावना का विकास हो सकता है।

कबीर ने सदैव इस तथ्य पर बल दिया कि मनुष्य की पहचान उसकी जाति या वंश से नहीं, बल्कि उसके कर्मों से होती है। वर्तमान परिदृश्य में जातिवाद समाज के अन्दर गहरी जड़ें जमा चुका है। रोजगार, विवाह तथा राजनीति जैसे क्षेत्रों में भी जातिगत पक्षपात स्पष्ट दिखाई देता है। इसी संदर्भ में कबीर का यह कथनकृ"जाति न पूछो साधू की, पूछ

लीजो ज्ञान।" आज भी पूर्णतः प्रासंगिक है।कबीर समाज में व्याप्त कर्मकाण्डों, आडंबरों एवं बाह्य दिखावे के प्रति गहरी चिन्ता व्यक्त करते हैं। वे इन प्रवृत्तियों का विरोध करते हुए स्पष्ट करते हैं कि ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग अत्यंत सरल एवं सीधा है, जोकि सत्य पर आधारित है। वे श्रम, परिश्रम तथा ईमानदारी को महत्व देते हैं तथा इस बात पर बल देते हैं कि मनुष्य को अपना जीवनयापन स्वयं के प्रयास से करना चाहिए, न कि अन्य पर आश्रित होकर।

वर्तमान समय में स्वार्थ, लालच तथा बेईमानी के कारण भ्रष्टाचार में वृद्धि हो रही है। मानव अवसर प्राप्त होने पर अन्यों के अधिकारों का हनन करने से भी नहीं हिचकचता। इसके अतिरिक्त विश्व आज आतंकवाद, युद्ध तथा धार्मिक कट्टरता की समस्याओं से जूझ रहा है। ऐसी परिस्थिति में कबीर का सार्वभौमिक संदेश"सभी धर्मों से ऊपर मानवता का धर्म है।"विशेष महत्व रखता है।

कबीर के काव्य का गहन अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि उन्होंने समन्वय की अपेक्षा खंडन को अधिक महत्व दिया। हठयोग, शून्य साधना, जातिप्रथा एवं कुरूतियों के प्रति उनका दृष्टिकोण खंडनपरक रहा। उन्होंने प्राचीन धार्मिक प्रथाओं को आंख मूँदकर स्वीकार करने के स्थान पर अपने निजी विश्वास तथा अनुभव को प्राथमिकता दी। इसी कारण वे कहते हैंकृ"सो ज्ञानी जो आप विचारै।"'बीजक' नाम से प्रसिद्ध उनकी रचनाओं का संकलन उनके शिष्य धर्मदास द्वारा किया गया, जिसमें सबद, साखी तथा रमैनी नाम से तीन भाग सम्मिलित हैं। गुरू ग्रन्थ साहिब में भी कबीर के दो सौ से अधिक पद उपलब्ध हैं, जो उनके विचारों की व्यापकता को प्रदर्शित करते हैं।

कबीर ने अपने युग के समस्त धर्मों का मूल्यांकन अपने निजी अनुभव एवं तर्कपरकता के आधार पर किया तथा जो सिद्धांत उन्हें उचित लगे, उन्हें स्वीकार कर लिया और शेष का खंडन कर दिया। उनके पदों में उनके व्यक्तित्व का सुन्दर चित्रण प्राप्त होता है, जहाँ वे एक सरल, स्वच्छ एवं सच्चा जीवन जीने वाले कवि के रूप में प्रतीत होते हैं।वर्तमान समय में मानवता धर्म, जाति, भाषा तथा समुदायों में विभाजित हो गई है। प्रत्येक व्यक्ति अपने धर्म को श्रेष्ठ सिद्ध करने की होड़ में लगा हुआ है, जिससे मानवता जोकि मुख्य धर्म है, पीछे छूट गई है। प्रेम का स्थान संघर्ष ने ले लिया है। कबीर के दोहों में यह स्पष्ट है कि सभी धर्मों एवं मनुष्यों का आधार एक ही है।

कबीर केवल भक्ति कवि ही नहीं, बल्कि सामाजिक जनजागरण, सुधारवादी चेतना तथा दार्शनिक दृष्टिकोण के प्रबल प्रतिनिधि हैं। वर्तमान परिवेश में उनके विचार वंचित समूहों की चेतना, दलित विमर्श तथा स्त्री विमर्श में भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।इस प्रकार, कबीर के विचार समय की सीमाओं से परे हैं एवं उनकी प्रासंगिकता आज भी उतनी ही प्रबल है जितनी उनके युग में थी। वे आज भी मानव समाज को एक समानतामूलक, मानवतावादी तथा सत्यपरक दिशा प्रदान करने में सक्षम हैं।

संदर्भ सूची

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद. (1957). कबीर. राजकमल प्रकाशन।
2. शुक्ल, श्रीनिवास. (1982). भक्ति आंदोलन और संत साहित्य, साहित्य भवन।
3. Daniel, Linda Hess, The Bijak Of Kabir, Oxford University Press, 2002.
4. Lorenzen, David N, Kabir Legends and Ananta-das"s Kabir Parachai, SUNY Press, 1991.
5. शाह, रमेशचन्द्र. (1985). निर्गुण काव्य परम्परा और कबीर. दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ।
6. शरण, मुरलीधर. (1978). कबीर दर्शन. दिल्लीः मोतीलाल बनारसी।
7. रघुवंश, डॉ०. (1975). कबीर का सामाजिक स्वरूप. वाराणसीः साहित्य भवन।
8. नागर, अमृतलाल. (1962). सन्त कबीर. दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।
9. सिंह, नामवर. (1982). कबीर के प्रति. दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।
10. सिंह, बच्चन. (1971). कबीर और उनका युग. प्रयागः भारतीय ज्ञानपीठ।

कबीर की काव्य दृष्टि

काव्य की शैली, भाषा, प्रतीक

भारतीय संत परंपरा में संत कबीर का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। कबीर केवल भक्ति के कवि मात्र नहीं रहे, बल्कि उन्होंने एक क्रांतिकारी विचारक, गहरे दार्शनिक एवं प्रभावी समाज–सुधारक के में अपनी भूमिका का प्रभावी निर्वाह किया। उनकी काव्य दृष्टि में लोकमंगल, मानवीय सत्य एवं अनुभूति के गहरे आयाम स्वतः उद्घाटित होते हैं। कबीर ने जीवन के जटलिक एवं गहरे सत्यों को अत्यंत सरल, सहज एवं संप्रेष्णशील भाषा में समाज के समक्ष प्रस्तुत किया, जिसमें व्यंग्यात्मक प्रतीकों का भी सुन्दर एवं सामयोचित प्रयोग दिखाई देता है। उनके विचारों में लोकानुभव, अध्यात्म एवं धार्मिक अनुभूति का समन्वय स्पष्ट से परिलक्षित होता है।

कबीर ने अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज में व्याप्त कुयों का प्रबल विरोध किया। तत्कालीन परिप्रेक्ष्य में पाखंड, अंधविश्वास, जाति–पाँति, एवं ऊँच–नीच जैसी विषमताएं चरम सीमा पर थी। कबीर एक ऐसे संत थे, जिन्होंने जन–साधारण को सत्य के मार्ग पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान की। उनकी वाणी में समाज को जागृत करने और नैतिक मूल्यों को पुनस्थापित करने की क्षमता विद्यमान है।

कबीर ने सत्य को ही ईश्वर का स्व माना एवं भक्ति को जीवन का मूल आधार घोषित किया। उन्होंने कर्मकाण्ड़ों एवं बाहरी आडंबरों की आलोचना करते हुए यह स्पष्ट किया कि वास्तविक धर्म नाम–स्मरण, सत्य और सदाचार में निहित है। उनकी भाषा सहज, सरल एवं लोकजीवन से अनुप्राणित थी, जिसके कारण उनके विचार आसानी से जनसाधारण तक

पहुँच सके। उनकी वाणी आज भी समाज को प्रभावित करते हुए उसे नवी दिशा प्रदान करती है।

भारतीय संत परंपरा में कबीर का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। उन्होंने अध्यात्म और सामाजिक यथार्थ दोनों को ही अपने काव्य का केन्द्रीय तत्व बनाया। कबीर की काव्य दृष्टि अनुभवाधारित, यथार्थवादी एवं मानवतावादी है। उन्होंने किसी शास्त्रीय अथवा पांडित्यपूर्ण भाषा का सहारा नहीं लिया, बल्कि सामान्य जन की बोली – साधूभाषा – में अपने विचारों का प्रस्तुतीकरण किया।कबीर की काव्य दृष्टि का मूल आधार निर्गुण भक्ति एवं अध्यात्मवाद है। उन्होंने ईश्वर को निराकार, अजन्मा एवं सर्वव्यापी सत्ता के में स्वीकार किया तथा जाति–पाँति, बाह्य आडंबर एवं मूर्तिपूजा का प्रबल विरोध किया। उनके अनुसार निर्गुण भक्ति का सामूहिक सार एक प्रेमपूर्वक, सत्यनिष्ठि एवं ईश्वरीय नाम–स्मरण से युक्त जीवन व्यती करना है।

कबीर के अध्यात्म पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद का प्रभाव, अद्वैतवाद से तात्पर्य है ब्रह्म और जीव एक ही है माया के वशीभूत होकर जीव स्वयं को ब्रह्म से भिन्न मानता है। वे कहते है–

लोगा भरमि न भुलहु भाई।

खालिकु खलक खलक मोह खालिकु, पूरा रह्यो सब ठाई।[7]

मनुष्य के अज्ञान का कारण माया है। माया प्रभु की आद्याशक्ति है जिससे वे सृष्टि का निर्माण करते हैं। संसार का प्रत्येक जीव माया के वशीभूत है–

"जल महि मीन माया के वेधे

दीपक पतंग माया के छेदे

काम मया कुंजर की व्यापै

भुवंगम भुगू माया माहि खापै।"

माया ऐसी मोहनी भाई, जेते जीय तेते उहकाई।"[8]

सत्संग ही इस माया से छुटकारा पाना एकमात्र मार्ग है। कबीर का अद्वैतवाद थोड़ा सा भिन्न है। वह अद्वैतवादी की भांति चिदानंद ब्रह्म में चैतन्य का विलय नहीं वरन सहजभाव से एक रूप होकर प्रभुमय होने की बात करते हैं–

लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल

लाली देखन में गई में भी हो गई लाल।

कबीर की भक्ति भावना पर इस्लाम के एकेश्वरवाद का प्रभाव है परन्तु इस रूप में नहीं जिस रूप में इस्लाम में स्वीकृत है। इस्लाम के अनुसार ईश्वर समस्त जीव और जगत से भिन्न है और परम सामर्थ्यवान है जबकि कबीर ईश्वर को सर्वव्यापी मानते है–

"जब थै आतम तत्त विचारा तब निराबैर भया"

सवहिन थैं, काम क्रोध गहि डारा।

व्यापक ब्रह्म सबनि मैं एकै को पंडित को जोगी।

इनमैं आप आप सबहिन मैं, आप आप सूँ खेलै।

नाना भाँति घड़े सब भाँडे, रूप धरे धरि मेले।।[9]

कबीर की भक्ति भावना में ज्ञान योग और प्रेम का सुन्दर समन्वय है परन्तु प्रेमतत्व की प्रधानता है उनके इस प्रेम तत्व पर सुफियों का प्रभाव माना जाता है। वस्तुतः कबीर और सुफी प्रेम भाव में सूक्ष्म अन्तर पाया जाता है। सूफी साधकों ने परमात्मा की नायिका और जीव (आत्मा) को नायक के रूप में चित्रित किया परन्तु कबीर ने परमात्मा को नायक और

आत्मा को नायिका के रुप में चित्रित किया है। जो भारतीय माधुर्य भाव के समीप है। सूफी साधकों की अपेक्षा कबीर की प्रेमानुभूति अधिक तीव्र एवं गहन है। वे मूलतः आध्यात्मिक प्रेम के गायक है। जिसमें प्रेम के तीनों सोपान – अनुराग, विरह और मिलन का समावेश है।

कबीर की साधना पद्धति पर समाज में व्याप्त विभिन्न मत–मतांतरों का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है, तथापि उसमें गहरन मौलिकता एवं स्वतंत्रता विद्यमान है। उन्होंने नाथ पंथियों की हठ योग साधना से प्रेरणा ग्रहण की, परन्तु उसमें निहित कठोरता एवं कठोर अनुशासन को परित्याग कर उसे प्रेम एवं भक्ति के सौन्दर्य से सम्पूर्ण किया। इसी प्रकार, उन्होंने वज्रयानी परंपरा का अनुसरण तो किया, किन्तु उसे अपनी मौलिक दृष्टि के आधार पर पुनः परिभाषित भी किया। उन्होंने वज्रयानी शाखा में व्याप्त वामाचार एवं तंत्रवाद को किसी भी रूप में स्वीकार नहीं किया।

जाति प्रथा की तीसी आलोचना, अनुष्ठानों का खंडन एवं शास्त्रों की निन्दा के प्रसंग में कबीर सहजयान परंपरा के उत्तराधिकारी प्रतीत होते हैं, परन्तु उन्होंने सहजिया परंपरा की रसिक प्रवृत्ति को स्वीकार नहीं किया। श्सहजश शब्द पर उनकी गहरन आस्था थी, किन्तु उससे संबद्ध रसिकता के प्रति वे अनुत्साही रहे। उनके अनुसार सहज ज्ञान का विषय नहीं, बल्कि प्रेम एवं अनुभूति का विषय है।

उन्होंने सहज को किसी कृत्रिम, बाह्य अथवा आरोपित तत्त्व के रूप में स्वीकार नहीं किया, बल्कि उसे वस्तुओं के आंतरिक, स्वभाविक एवं सत्य स्वरूप के रूप में परिभाषित किया। साधना के क्षेत्र में यद्यपि सहज एक परंपरा के रूप में विकसित हो गया, तथापि उसके वास्तविक स्वरूप को पहचानने में अधिकांश लोग असमर्थ रहे। कबीर के अनुसार प्रत्येक जीव का

मूल सारतत्त्व ही सहज है, जो मानवीय अस्तित्व के आध्यात्मिक आयाम को स्पष्ट करता है।

सहज सहज सबको कहै, सहज न चीन्है कोई।

तिन सहमै विषय तजी सहज कहीजै सोई।[10]

जो सहजरूप से विषयों को त्यागकर राममय हो जाए वही वही सहज है कबीर योगियों की हठयोग साधना को बाह्य क्रियाकलाप के रूप में देखते है इसलिए वह सहज समाधि को श्रेष्ठ मानते है। वह हठयोगी और नाथापंथियों के समान कष्ट साध्य आसन प्राणायाम तथा चिमरा आदि बाह्य उपकरणों को धारण करने के पक्ष में नहीं है। वास्तविक योगी संसार वे प्राणियों से भिन्न होता है। निरति उसकी मुद्रा है सुरति उसकी श्रृंगी है। कबीर के अनुसार सुरति का अर्थ है किसी पदार्थ में रमकर इतने आनन्द का अनुभव करना कि चित्त की चंचलता एवं क्षोभ नष्ट हो जाए। निरति का अर्थ है–'पूर्णरूप से' निरति सुरति की चरमावस्था है। कबीर की दृष्टि में वही योगीश्वर हैजिसका चित्त सदा सहजशून्य में समाहित है–

'कहै कबीर सोई जोगीश्वर, सहज सुनि ल्यौ लागे।'

(कबीर ग्रन्थावली, 95 69)

कबीर के व्यक्तित्व में फक्कड़पन मुखर था। इसी फक्कड़पन में उन्होंने उन सभी बातों के विरुद्ध अपना आक्रोश व्यक्त किया जो मानवता को क्षति पहुंचाती है या परमात्मा को पाने के मार्ग में भटकाव या बाधा उत्पन्न करती है।

उन्होंने तत्कालीन समाज में व्याप्त अराजकता, भेदभाव छुआछूत, पाखण्ड के विरुद्ध आमजन को चेताया और ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जहाँ सत्य और प्रेम की प्रधानता है। यद्यपि कबीर से पूर्व बौद्ध सिद्ध जाति पांति

एवं वाह्य आडम्बर के विरोध का रास्ता बना चुके थे परन्तु कबीर की अभिव्यक्ति कला और साहित्य के स्तर पर रही जिसने लोगों के मन को अधिक प्रभावित किया।

करीब का विद्रोह समाज से नहीं सामाजिक कुरीतियों के प्रति है। वे पाखण्ड एवं पाखण्डियों के फेर में फँसी जनता को जगाना चाहते है। उनकी दृष्टि में तीर्थ स्थानों पर भटकने का कोई औचित्य है, परमसत्य तो प्रत्येक जीव के मन में विराजमान है–

मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया कासी जाँनि।

दसवाँ द्वारा देहुरा, तामै जोति पिहांणि।[11]

कबीर को भक्तिकाल में नारी का सबसे बड़ा निदक माना जाता है, उनकी दृष्टि में नारी तीनों लोकों को नष्ट करने वाली **नारी नसावै तीनि सुख, जा नर पास जाइ।** परन्तु उन्होंने सदाचारी स्त्री की निन्दा नहीं की और कामलोलुप दुराचारी स्त्री की नहीं वरन पुरुष की भी निन्दा की है। इस भाव से सम्बन्धित सखियों का शीर्षक भी 'कामी नर को अंग' है। कवीर कहते है–

पर नारी पर सुंदरी, बिरला बंचै कोइ।

खातों मीठी खाँडसी, अति कालि विष होइ।[12]

कबीर की काव्य–दृष्टि का दूसरा पहलू सामाजिक चेतना है। कबीर ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों, पाखण्ड़ व धर्मान्धता पर प्रहार किया। उन्होंने सरलता, सत्य और निष्कपटता के साथ जीवन जीने का संदेश दिया। कबीर की कविताओं में बिंबों व प्रतीकों की प्रचुरता है। वह कम शब्दों में अपनी बात कहने वाले कवि रहें हैं इसलिए उनको गागर में सागर वाला

कवि कहते हैं। उनके साधारण से दोहो में बडी ही दार्शनिक बातें देखने को मिलती हैं–

"मोको कहाँ ढूढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।"

अर्थात् यहाँ परमात्मा साधक के मन में बसे हुए हैं तो उनको बाहर खोजने का कोई अर्थ नहीं बनता है। कबीर की काव्य–दृष्टि की कुछ विशेषताएं–

- कबीर ने केवल बाह्य आडंबरों पर ही नहीं बल्कि मनुष्य के अंतर्मन पर भी ध्यान केन्द्रित किया है।
- कबीर ने काव्य को साधना का हेतु माना है जिससे मनुष्य को परमात्मा व सत्य तक पहुंचने का कारण मिलता है।
- कबीर ने उस समय समाज में व्याप्त अंधविश्वास, अस्पृश्यता, मूर्ति पूजा व कर्मकाण्ड़ों का कड़ा विरोध किया।
- कबीर के काव्य में सत्य की अनुभूति देखने को मिलती है। उन्होंने वही लिखा जो उन्होंने स्वयं अनुभूत किया।

कबीर की काव्य दृष्टि आध्यात्मिक और सामाजिक यथार्थ का अद्वितीय संगम है। उनके काव्य में भक्ति, रहस्य और सुधार का समन्वय मिलता है। इसलिए उनकी रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक और प्रेरणादायी हैं।

कबीर की भाषा–

भारतीय भक्ति आन्दोलन के मुख्य संत कबीरदास जी एक ऐसे संत रहे हैं जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से जीवन की सच्चाई, धर्म की मौलिकता और समाज सुधार की ओर ध्यान आकर्षित कराया। कबीर की

वाणी में सहजता, सरलता व लोकजीवन से जुड़ाव महसूस होता है। कबीर की भाषा को साधुक्कड़ी भाषा कहा गया है क्योंकि इसमें कई भाषाओं जैसे पंजाबी, मगही, राजस्थानी, खड़ी बोली, अवधी, ब्रज व भोजपुरी का समिश्रिण है। इनकी भाषा सरल, सीधी, लोकजीवन से जुड़ी हुई है जिसमें मुहावरों व लोकोक्तियों के साथ तत्सम व तद्भव का भी सुन्दर समावेश देखने को मिलता है। इसलिए कबीर की भाषा सर्वसुलभ व लोकप्रिय रही है। कबीर ने भाषा को केवल अभिव्यक्ति का साधन ही नहीं बनाया, बल्कि उसे जनजागरण का माध्यम भी बनाया। उनकी भाषा में न कोई कृत्रिमता दिखाई पड़ती है और ना ही उसमें कोई पांडित्य का दिखावा। इनकी भाषा लोक के बीच से निकली है और लोक के बीच उनकी बनकर रहती है। इसलिए वह भाषा उनके हृदय में उतर जाती है और अंर्तमन पर जादू जैसा प्रभाव डालती है।

कबीर की भाषा की विशेषताएं–

- **सहज और सरल भाषा–** कबीर ने सदैव यह प्रयास किया कि लोकजन में उनकी वाणी हर हृदय में सरलता के साथ उतर जाए।

उन्होंने कठिन व दार्शनिक सत्यों को भी बहुत सहजता से कह हर सरलता के साथ समझा दिया। जैसे–

"माला फेरत जग भया, फिरा न मन का फेर।

कर का मनका छोड़ि दे, मन का मनका फेर।।"

अर्थात् यहाँ इस दोहे का अर्थ कुछ इस प्रकार है कि हाथ में माला फेरते हुए युग बीत गया है किंतु इस चंचल मन के विकारों में कहीं कोई बदलाव नहीं आया है। इसलिए दूसरी पंक्ति में कवि कहते हैं कि हाथ की

माला के मनकों को छोडकर हमें अपने मन के मोतियों को फेरना चाहिए एवं मन की शुद्धि की ओर ध्यान देना चाहिए।

- **लोकजीवन से संबद्ध**–कबीर जुलाहा थे इसलिए उनके काव्य में भी यह महसूस होता है। उन्होंने धागा, कपड़ा आदि का प्रयोग प्रतीकों के रूप में किया है। उनकी भाषा मजदूर गाड़ीवान बुनकर आदि के जीवन से मेल खाती है। जैसे–

"सूत्र परे को आँकता, गांठि न दीन्ही कोय।

जोड़ी जोड़ी सब किया, एक अकेला सोय।।"

इस साखी में कबीरदास जीवन और मृत्यु की सच्चाई तथाआत्मा–परमात्मा के संबंध को प्रतीकात्मक रूप में समझाते हैं। वह कहते हैं कि यह संसार क्षणभंगुर है। मनुष्य अपने जीवन में अनेक रिश्ते और बंधन जोड़ता है लेकिन अंततः आत्मा का जब परमात्मा में लीन होने का समय आता है तब वह अकेली ही होती है। इसलिए व्यर्थ के संसारिक मोह माया में न उलझकर परमात्मा की साधना में जीवन बीताना उचित है।

- **साधुक्कड़ी भाषा–** संत कवियों के द्वारा प्रयुक्त मिश्रित भाषा को साधुक्कड़ी भाषा कहा गया है। इसी के अन्तर्गत कबीर की भाषा भी आती है। इसमें ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि की झलक देखने को मिलती है।

- **तत्सम और तद्भव शब्दों का मिश्रण–** कबीर के द्वारा उनके काव्य में तद्भव व तत्सम शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। जैसे–

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंड़ित होय।।"

इसमें पोथी 'पुस्तक' शब्द का तद्भव रूप है क्योंकि मूलसंस्कृत शब्द पुस्तक है। इसी प्रकार जग 'संसार' का तद्भव रूप है।

- **मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग–** इनकी भाषा में मुहावरे व लोकोक्तियां बहुत सजीवता के साथ प्रयोग की गई हैं। जिससे इनकी वाणी की व्यंजना एवं व्यंग्य शक्ति बढ़ जाती है। जैसे–

"बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।

पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।"

इस दोहे में कबीर ने ऐसे व्यक्तियों पर कटाक्ष किया है जो केवल नाम मात्र के लिए ही बड़े होते हैं। वास्तविकता से उनको कोई लेना–देना नहीं होता है। कबीरदास जी उन जैसे व्यक्तियों की आलोचना करते हुए कहते हैं कि कुछ व्यक्ति केवल नाम या पद में बड़े होते हैं उनसे समाज को कोई लाभ नहीं होता है।

व्यंग्य और कटाक्ष से युक्त भाषा– कबीर की वाणी में पाखंड व आडंबर पर तीखे व्यंग्य देखने को मिलते हैं। जैसे–**पढ़ि–पढ़ि पंडित करू चतुराई, निज मुक्ति मोहिं कहु समुझाई।कहँ बस पुरूष कहाँ सो गाऊँ, पंडित मोहिं सुनावहु नाऊँ।**

चारि वेद ब्रह्में निज ठाना, मुक्तिक मर्म उनहुँ नहिं जाना।दान–पुन्य उन बहुत बखाना, अपने मरन की खबरि न जाना।एक नाम है अगम गँभीरा तहवाँ स्थिर दास कबीरा।

चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, राई न ठहराय।

आवागमन की गम नहीं, तहँ सकलो जग जाय।।"

यह पद रमैनी से लिया गया है। यह व्यंग्यात्मक शैली में कहा गया है जिसमें वह पंडित व मुल्ला से प्रश्न पूछते हैं। वह कहते हैं कि तुम

पंडित हो, शास्त्रों को पढ़ते हो और फिर मोक्ष के नाम पर लोगों को अपने हिसाब से मूर्ख बनाते हो। वे अक्सर मुक्ति की बातें बहुत चतुराई और तर्क के साथ करते हैं एवं इसी प्रकार की बहसों व चर्चाओं में उलझे रहते हैं। लेकिन कबीर कहते हैं कि अगर तुमने वास्तव में मुक्ति को पा लिया है तब तुम्हें यह समझना चाहिए कि तुमने परमपुरूष को पा लिया है। किंतु फिर प्रश्न यह है कि वह परमपुरूष कहां है? उसका गाँव कहां है? उसका नाम क्या है? अर्थात् केवल चर्चा या शास्त्रार्थ करने भर से मुक्ति नहीं मिल जाती। जब तक हम ईश्वर के वास्तविक रूप को पहचानते नहीं हैं तब तक यह ज्ञान अधूरा ही है।

- **लयात्मक और संगीतात्मक भाषा–** उनके पद व साखियां छंदबद्ध हों या न हों, उनमें स्वाभाविक लय और संगीत है। यही कारण है कि कबीर की वाणी को गाकर प्रस्तुत किया जाता रहा है। जैसे–

कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।

जो घर फूँके आपना, चले हमारे साथ।।

प्रस्तुत दोहे में छंद व मात्रा का संतुलन देखने को मिलता है। इसमें 13–11 मात्राओं का सुन्दर क्रम है जिसमें स्वाभाविक लय मिलती है और पढ़ते समय इसकी ध्वनि लयबद्ध प्रतीत होती है। इसमें अनुप्रास अलंकार का प्रयोग किया गया है जो पंक्तियों को मधुर व संगीतात्मक बनाता है। इसकी आदेशात्मक व घोषणात्मक शैली लय को और भी प्रखर बनाती है। कबीर ने इसमें संक्षिप्तता और सरलता से बहुत कम शब्दों में बहुत ही गहरी बात कही है

कबीर की भाषा का महत्व–

कबीर की वाणी ने समाज और साहित्य दोनों को गहराई से प्रभावित किया। कबीर ने अपनी साधना, विचारों और अनुभवों को व्यक्त करने के लिए भाषा को सशक्त माध्यम बनाया। कबीर के लिए भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं बल्कि समाज सुधार और ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग भी थी।

- यह भाषा जनसाधारण की है, जिससे उनके काव्य का संदेश सीधे लोगों तक पहुचाँ।
- इसमें गूढ़ आध्यात्मिक विचारों को सरलता से समझाया गया है।
- यह भाषा लोक व शास्त्र के बीच सेतु का कार्य करती है।
- आज भी कबीर के दोहे गाँव देहात और पाठ्यपुस्तकों में पढ़े और गाए जाते हैं।

कबीर ने भाषा को केवल अभिव्यक्ति के माध्यम तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे परिवर्तन और आंदोलन का साधन बनाया। उनकी सहज, लयात्मक और लोकजन से जुड़ी भाषा ही उनकी सबसे बड़ी शक्ति रही है। इसी कारण से कबीर की वाणी आज भी उतनी ही प्रासंगिकता के साथ तरोताजी बनी हुई है।

कबीर की शैली–

कबीर की शैली में भिन्नता देखने को मिलती है। उनकी शैली में जीवन के व्यक्तिगत अनुभव की अभिव्यक्ति देखने को मिलती है।

1. सहज शैली–

इनकी शैली की यह विशेषता है कि ये जटिल संवादों को भी सहजता से कह जाते हैं। ऐसी सीधी भाषा का प्रयोग करते हैं कि कोई भी इनकी बातों को सरलता से समझ जाता है। इनकी उद्देश्य यही था कि साधारण जनमानस को प्रभावित करना।

"साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।

धन का भूखा जी फिरै, सो तो साधू नाहिं।।"

उपर्युक्त दोहे में कबीरदास जी बहुत सरलता के साथ यह बताया है कि साधू संतों को केवल आदर भाव चाहिए होता है वो धनपिपाषु नहीं होते हैं एवं यदि कोई ऐसा कर रहा है तो वह साधू के भेष में लोभी है। साधूजनों को धन का लोभ नहीं होता वे तो केवल भाव के भूखे होते हैं।

"माला फेरत जग भया, फिरा न मन का फेर।

कर का मनका छोड़ि दे, मन मनका फेर।।"

उपर्युक्त दोहे में कबीर कहते हैं कि इस संसार के लोग माला का जाप करते हुए ईश्वर का नाम लेते हैं किंतु मन उनका वैसा ही होता है उसमें कोई फेर बदल नहीं होता। बाहरी भक्ति और दिखावे से कोई लाभ नहीं होता यदि मन के भीतर के विकार नहीं मिटते।

2. व्यंग्यात्मक शैली–

कबीर की व्यंग्य शैली बहुत प्रभावशाली रही है। इन्होंने पाखण्ड, धर्मान्धता व फालतू के आडंबरो पर व्यंग्य किया है और इनके व्यंग्यों ने जनमानस में चिंगारी का काम किया।

पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।

ताते तो चाकी भली, पीस खाए संसार।।

कबीर ने मूर्तिपूजा का जमकर विरोध किया है। इस दोहे में उन्होंने मूर्तिपूजा पर व्यंग्य करते हुए कहा है कि यदि पत्थर की पूजा करने से ईश्वर मिल जाते हैं तो मैं पहाड़ पूजने के लिए तैयार हूँ। किंतु पत्थर का वास्तविक उपयोग तो चक्की बनाने में होता है जिससे सब अनाज पीसकर जीवन यापन करते हैं।

3. लोक शैली–

कबीरदास जी की शैली में साखी पदों की झलक देखने को मिलती है एवं कथा वार्तालाप भी बहुताय में है। इन्होंने लोकगीतों, कहावतों, प्रश्नोत्तरी और सवांद का भी भरपूर प्रयोग किया है।

4. रहस्यात्मक शैली–

इसे संत काव्य की पहचान कहा जाता है। कबीर दास जी ने अपने पदों में साधना के गूढ़ रहस्यों को प्रतीकात्मक रूप में व्यक्त किया है।

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ।

मैं बपूरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ।।

प्रस्तुत दोहे में कबीर ने सत्य और ईश्वर की खोज की कठिन साधना के विषय में बताया है कि सत्य और ईश्वर की प्राप्ति साहस, साधना और गहराई में उतरने के बाद ही संभव हो सकती है। जो लोग सतही पूजा–पाठ करते हैं या किनारे पर ही बैठे होते हैं उनको कुछ हासिल नहीं होता है। साधक को चाहिए कि वह आलस को त्यागकर निडर होकर साधना करे तभी वह ईश्वर रूपी सच्चे मोती को प्राप्त कर सकता है।

कबीर के प्रतीक–

कबीर का काव्य लोकजीवन से सीधा जुड़ा हुआ है इनके काव्य में हम सामान्य जीवन से जुड़े प्रतीकों को देख सकते हैं जिनके माध्यम से बहुत ही गूढ़ आध्यात्मिक भावों को सरलता से समझा जा सकता है। वह स्वयं जुलाहे थे और आम आदमी के सुख–दुःख, काम–काज और संघर्ष को गहराई से जानते समझते थे। इसलिए उनके काव्य में वे प्रतीक व बिंब मिलते हैं जो सीधे सामान्य जनजीवन से जुड़े हुए हैं। जैसे–

- **जल व गागर का प्रतीक–**इसमें जल को आत्मा/परमात्मा का व गागर को शरीर का प्रतीक माना गया है। क्योंकि जिस प्रकार जल के बिना गागर व्यर्थ है उसी प्रकार आत्मा के बिना शरीर किसी काम का नहीं रहता।

- **बुनाई व ताना–बाना–**कबीर ने जीवन को ताने बाने से जोड़ा, वह स्वयं बुनकर थे।

"ज्यों ताना बुनना बुनि बुनि चढ़ै, तिसु नाई जग बीता।"

यह प्रतीक जीवन की क्षणभंगुरता और संसार के चक्र को सरल ढ़ंग से समझता है।

- **दीपक व ज्योति–**यहां दीपक आत्मा का व ज्योति शरीर का प्रतीक है।

"बाती बाती सब कहें, बाती की बात न कोय।"

इसमें दीपक से मनुष्य के जीवन और उसकी नश्वरता का बोध कराया गया है।

- **नाव व सागर**–नाव को जीवन से जोड़कर व सागर को परमात्मा से जोड़कर देखा गया है। जीवनरूपी नाव को पार लगाने के लिए गुरू और उनकी भक्ति की आवश्यकता बताई गई है।

कबीर के काव्य में प्रयोग किए गए प्रतीक बुनकर की करघे की आवाज से लेकर दीपक, नाव, गागर आदि साधारण जीवन से जुड़े हुए हैं। यही कारण है कि उनकी वाणी आम जन के बहुत करीब है। कबीर ने गूढ़ आध्यात्मिक सत्य को भी साधारण जीवन के प्रतीकों के माध्यम से बहुत सरलता व सहजता से प्रकट कर दिया है।

कबीर की काव्य दृष्टि व आधुनिक महत्व–

कबीर भविष्य दृष्टा थें। उन्होंने उस समय जो उपदेश दिए थे वे आज के समय में भी उतने ही सार्थक हैं। उनके व्यंग्य आज के समय में भी धार्मिक और सामाजिक पाखडों पर सटीक प्रहार करते हैं। उनकी काव्य दृष्टि से समाज को समानता, एकता व सद्भाव की शिक्षा मिलती है। कबीर की काव्य दृष्टि वास्तव में अद्वितीय है। उनकी भाषा ऐसी लगती है मानो हमारे लोकजीवन से ही उपजी है और अपनी व्यंग्यपूर्ण व सहज शैली में लोकजीवन के ही काम आ रही है। उनके द्वारा अपने काव्य में प्रयोग किए गए प्रतीक भी अध्यात्म को सहजता के साथ सामने रख देते हैं।

आई ए रिर्चड्स की भाषा में आलोचनात्मक मूल्यांकन के नये मानदंड की दृष्टि से देखें तो पता चलता है कि भाषिक संरचना में कबीर एक तनाव के कंपन को बनाए रखते हैं। तार्किकता और प्रेम की सहजानुभूति के बीच सेतु भी है और टक्कर भी।

साखी, सबद, रमैनी की भूमिका

कबीर ने कवि के रूप में लोक जीवन की सहजता को अधिक महसूस किया है। उन्होंने अपने काव्य में छन्द, अलंकार को गौण ही रखा है और लोक मंगल को प्रधान रखा है। इनकी वाणी, विचारों को इनके शिष्य धर्मदास ने एवं अन्य अनुयायियों के द्वारा बीजक नाम से संग्रह किया गया। जिसे तीन भागों साखी, सबद व रमैनी में विभाजित किया गया है। जिसमें रमैनी व सबद में गेय पद हैं और साखी में मुख्यतः दोहा छन्द देखने को मिलता है। कबीर ने दोनों समुदायों को सुनकर, समझकर उनके अच्छे विचारों को आत्मसात् किया और फिर उन्हें लोगों के बीच सुनाकर जनजागरण का कार्य किया। कबीर लिखना नहीं जानते थे इसलिए उनके शिष्यों के द्वारा इनकी विचारों को लिखा गया। जिसे बाद में उनके शिष्यों के द्वारा ही प्रकाशित कराया गया ताकि आने वाले समय में समाज के लिए लाभकारी सिद्ध हो। कबीर के विचार में ईश्वर एक ही है। उन्होंने एक ही ईश्वर को माना है एवं उनके द्वारा कर्मकाण्ड़ जैसे– अवतार, मंदिर, मस्ज़िद, मूर्तिपूजा आदि का विरोध किया गया। कबीर के विचारों को बीजक नाम से संग्रह किया गया जिसे तीन भागों में विभाजित किया गया है–

- रमैनी
- सबद
- साखी

इनमें तीन प्रकार के प्रसंग हैं जैसे तीर्थाटन, हज, संसार की अनित्यता, हृदय की शुद्धि, माया की प्रबलता, व्रत, नमाज, हिंदु मुस्लिम विचार विभेद, वेदान्त तत्व आदि। साखी में सांप्रदायिक शिक्षा व सिद्धान्त देखने को मिलते हैं। इनकी भाषा में पंजाबी व राजस्थानी भाषा का मिश्रण

देखने को मिलता है जिससे इनकी भाषा को सधुक्कड़ी भाषा भी कहा गया है। रमैनी व सबद में गेय पद पाए गए है जिनमें मुख्यतः पुरबी व ब्रजभाषा का प्रभाव देखने को मिलता है।

बीजक सबसे अधिक प्रमाणिक ग्रंथ माना गया है। जिसमें 84 रमैनियां संकलित हैं। ये रमैनियां चौपाई छंद में लिखी गई हैं। अधिकतर रमैनियों के अंत में साखी उद्धृत की गई है एवं बहुत कम रमैनियां ऐसी हैं जिनके अंत में साखी नहीं है। साखियों को सबसे अधिक प्रमाणिक माना गया है। स्वयं बीजक में भी रमैनियों को प्रमाणित करने के लिए साखियों को ही महत्व दिया गया है।

रमैनी–

कबीर की वाणी का सबसे महत्वपूर्ण संग्रह बीजक है। बीजक का अर्थ बीज या मूल है। इसमें कबीर के विचारों का सार, बीज रूप में संकलित है। बीजक तीन मुख्य भागों में विभाजित है– रमैनी, सबद व साखी। रमैनी बीजक का बहुत महत्वपूर्ण व प्रथम भाग है।

रमैनी का स्वरूप–

कुछ विद्वानों का मानना है कि बीजक में लगभग 75 रमैनी हैं और कुछ ने इनकी संख्या 84 मानी है। ये छोटे पदो व कवित्तों जैसी रचनाएं हैं। रमैनी की भाषा सरल, सहज व बोलचाल की भाषा है। इसमें लोकभाषा, अरबी–फारसी और ग्रामीण जीवन से जुड़े हुए शब्द मिलते हैं। रमैनी छंदबद्ध होती है और इनमें गीतात्मकता व लय का विशेष महत्व होता है।

रमैनी की विषय वस्तु–

- **समाज–सुधार–** कबीर ने रमैनी में धर्म के नाम पर समाज में हो रहे कर्मकाण्ड़, पाखण्ड और आडंबरों पर कड़ा प्रहार किया। उन्होंने ब्राह्मणवाद, जातिवाद, मूर्तिपूजा और बाहरी दिखावे का विरोध किया।
- **आध्यात्मिक चिंतन–** रमैनी में कबीर ने आत्मा व परमात्मा के संबंध पर प्रकाश डाला है। उन्होंने निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बल दिया।
- **मानवता और समानता का संदेश–** रमैनी में कबीर ने जाति–पाति का विरोध किया और संसार के कल्याण के लिए प्रेम और मानवता के बिदुओं को महत्वपूर्ण बताया है।
- **प्रतीकों का प्रयोग–** रमैनी में सामान्य जीवन से जुड़े हुए बिंबों का प्रयोग हुआ है जैसे– चाक, नाव, गागर, दीपक, करघा आदि।
- **गुरू भक्ति–** कबीर ने मनुष्य जीवन के लिए गुरू को बहुत महत्वपूर्ण बताया है। उन्होंने जीवन रूपी नैया को पार लगाने के लिए गुरू को सारथी की संज्ञा दी है। वह कहते हैं कि गुरू के बिना ज्ञान की प्राप्ति असंभव है।

रमैनी की साहित्यिक विशेषताएँ–

- **लयात्मक व संगीतात्मक–** रमैनी को गाया जाता था इसलिए इनमें गीतों के जैसी मधुरता है।
- **सरलता व सहजता–** इसकी भाषा साधारण जनजीवन की है, इसमें कठिन संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है।
- **सीधापन और व्यंग्य–** कबीर ने अपनी वाणी में सीधे दो टूक शब्दों में समाज की विसंगतियों पर प्रहार किया है।

- **आध्यात्कि गहराई–** कबीर की वाणी की यह विशेषता रही है कि छोटे–छोटे पदों में गहन दर्शन की बातें छिपी हुई हैं।

आचार्य विश्वनाथ त्रिपाठी लिखते हैं कि कबीर व अन्य निर्गुण संतों की उलटबाँसियां प्रसिद्ध हैं। उलटबाँसियों का पूर्व रूप हमें सिद्धों की 'संधा भाषा' में मिलता है। उलटबाँसियां अंतस्साधनात्मक अनुभूतियों को असामान्य प्रतीकों में प्रकट करती हैं। वे वर्णाश्रम व्यवस्था को मानने वाले संस्कारों को धक्का देती हैं। इन प्रतीकों का अर्थ खुलने पर ही उलटबाँसियां समझ में आती हैं।

सबद–

बीजक का 'सबद' भाग सबसे प्रभावशाली व लोकप्रिय है। सबद अर्थात् शब्द, वाणी। किंतु कबीर के अनुसार इसका अर्थ एक ऐसा सत्य जिसे साधक अनुभव करता है।

सबद का स्वरूप–

- **संख्या और संरचना–** बीजक के अन्तर्गत लगभग 100 सबद आते हैं।
- **रूप–** इसमें सबद छोटे–छोटे पदों और गीतों के रूप में मिलते हैं।
- **भाषा–** सबद की भाषा सहज, लयात्मक और लोकजीवन से जुड़ी हुई है। इसमें पूर्वी हिन्दी, ब्रज, भोजपुरी, अवधी, पंजाबी तथा अरबी–फारसी के शब्दों का स्वरूप मिलता है।
- **शैली–** इनमें भक्ति, दर्शन और समाज–सुधार का सुन्दर समन्वय मिलता है।

सबद की विषयवस्तु–

- **निर्गुर्ण भक्ति का स्वरूप–** कबीर के सबद निर्गुण और निराकार ईश्वर की उपासना पर आधारित हैं। इनमें ईश्वर को किसी रूप या मूर्ति में नहीं, बल्कि अविनाशी और अजन्मे तत्व के रूप में स्वीकार किया गया है।

- **आध्यात्मिक अनुभव–** सबद में कबीर ने आत्मा व परमात्मा के मिलन की अनुभूति को प्रकट किया है।

"मोको कहाँ ढूँढे रे बंदे, मैं तो तेरे पास में।"

इस पंक्ति में कहा गया कि ईश्वर को कहीं ओर जाकर खोजने की आवश्यकता नहीं है वह तो स्वयं हमारे ही भीतर वास करते हैं।

- **गुरू का महत्व–** सबदों में गुरू का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। गुरू वह माध्यम है जिसके बिना मोक्ष व ज्ञान की प्राप्ति लगभग न के बराबर ही है।

- **समाज–सुधार का संदेश–** सबदों में कबीर ने जाति–पाति के विरूद्ध, पाखंडों व आडम्बरों पर तीखा प्रहार किया और जनमानस को इसके विरूद्ध चेताया। उनका संदेश स्पष्ट था कि ईश्वर को प्राप्त के लिए हमें इन बाहरी दिखावे की आवश्यकता नहीं है केवल सच्चे मन व साधना से हम ईश्वर तक पहुंच सकते है।

- **प्रतीक व बिंब–** सबदों में साधारण जीवन के प्रतीकों का खूब प्रयोग किया गया है जैसे– नाव, दीपक, चाक, सागर, करघा आदि।

साहित्यिक विशेषताएँ–

- **लयात्मकता और संगीतात्मकता–** ये गेय पद हैं। आज भी भजन–कीर्तनों के समय इन्हें गाया जाता है।
- **सरलता और सहजता–** सामान्य लोकजन भी इन्हें सरलता के साथ समझ जाते हैं क्योंकि इनकी भाषा सीधे जनमानस की है जो सीधे उनके हृदय पर राज करती है।
- **भाव व दर्शन का संगम–** सबदों में भक्ति व दर्शन के साथ–साथ आध्यात्म व सामाजिक चेतना का सुन्दर मिश्रण है।
- **प्रभावपूर्ण व्यंग्य–** कबीर ने पाखंडों व आडंबरों पर तीखी चोट करने के लिए व्यंग्यपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है।

बीजक का सबद भाग कबीर की निर्गुण भक्ति, गहन आध्यात्मिक अनुभव और समाज सुधारक दृष्टिकोण का परिचायक है। इसमें सहज भाषा, लयात्मकता और प्रतीकों के माध्यम से कबीर ने ईश्वर के सत्य स्वरूप को और मानव जीवन की वास्तविकता को उजागर किया है। इसी कारण से सबद आज भी भक्तों और साधकों के हृदय को गहराई से छूते हैं और उन्हें आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करते हैं।

साखी

कबीर के बीजक का साखी भाग गूढ़, संक्षिप्त और सारगर्भित उपदेशात्मक स्वरूप के कारण विशेष महत्व रखता है।

साखी का स्वरूप

- **अर्थ–** साखी का अर्थ है साक्ष्य, प्रमाण। अर्थात् इसका तात्पर्य है जीवन और अध्यात्म के सत्य की संक्षिप्त अनुभूति।

- **संख्या–** बीजक में लगभग 300 से अधिक साखियां पाई जाती हैं।
- **रूप–** साखियां दोहा छनद में रची गई हैं। दो पंक्तियों के छोटे–छोटे पदों में कबीर ने गहन विचार व्यक्त किये हैं।
- **भाषा–** इनमें लोकजीवन से जुड़ी सहज बोलचाल की भाषा है। संस्कृतनिष्ठ जटिलता नहीं, बल्कि स्पष्टता व सरलता का भाव है।

साखी की विषयवस्तु

- **जीवन–दर्शन–** कबीर ने साखियों में मानव जीवन की क्षणभंगुरता, कर्म का महत्व और सदाचार पर बल दिया।

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो मन खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय।।"

- **समाज–सुधार और पाखण्ड–विरोध–** जात–पात ऊँच–नीच, अंधविश्वास और पाखंड पर तीखी चोट की गई। कबीर कहते थे कि परमात्मा तक पहुंचने का मार्ग कर्म, प्रेम और सत्य है न कि कर्मकाण्ड़।
- **निर्गुण भक्ति और अध्यात्म–** साखियों में कबीर ने निर्गुण, निराकार ईश्वर की उपासना का मार्ग बताया है। उन्होंने कहा है कि एक साधक के मन में ईश्वर सदैव निवास करते हैं।
- **गुरू का महत्व–** साखियों में गुरू की अनिवार्यता पर बल मिलता है। हमारे गुरू हमें अंधकार से प्रकाश की राह दिखाते हैं।

"गुरू गोविंद दोउ खड़े, काके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरू आपने, गोविंद दियो बताए।।"

- बिंब और प्रतीक– हमारे निजी जीवन के प्रतीकों जैसे नाव, चाक, सागर, करघा आदि का प्रयोग करके जीवन के गूढ़ सत्य को समझााया गया है।

साहित्यिक विशेषताएं–

- **दोहा छंद का प्रयोग–** हर साखी सहज, गेय और याद रखने योग्य है।
- **संक्षिप्तता और गहनता–** इनकी विशेषता यह भी है कि इनमें कम शब्दों में गहरी बात कह दी गई है।
- **लयात्मकता और संगीतात्मकता–** इनका पाठ करते समय स्वाभाविक लय और संगीत का अनुभव होता है।
- **सारगर्भित शैली–** हर साखी उपदेशात्मक और दार्शनिक स्वर लिए हुए है।
- **लोकजीवन से संबद्धता–** इसमें भाषा और प्रतीकों को साधारण लोकजीवन से लिया गया है।

बीजक का साखी भाग कबीर की संक्षिप्त, सारगर्भित और उपदेशात्मक वाणी का जीवंत उदाहरण है। इसमें समाज–सुधार, जीवन–दर्शन, निर्गुण भक्ति और गुरू भक्ति का अद्भुत समन्वय है। साधारण भाषा, दोहा छंद और गहन संदेश के कारण ये साखियां आज भी हर वर्ग के व्यक्ति को प्रेरणा देती हैं। कबीर की साखियां जीवन का दर्पण और आध्यात्मिक मार्गदर्शन दोनों हैं।

निर्गुण भक्ति और आध्यात्मवाद

हिन्दी साहित्य का भक्ति काल भारतीय संस्कृति और समाज के इतिहास में अपना एक प्रमुख स्थान रखता है। इस युग में संत कवियों के द्वारा लोकजीवन को धर्म से जोड़ने का प्रयास किया गया। लोकजन को प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर से जुड़ाव महसूस हो इस दिशा में काम किया गया। संत कबीर इन्हीं कवियों में सर्वाधिक प्रखर एवं मुक्त चिंतक रहे थे।

कबीर आदि संत कवियों को निर्गुण भक्ति परंपरा का प्रमुख प्रवक्ता माना जाता है। कबीर का आध्यात्मिक परिचय भले ही उन्हें रामानन्द जी से मिला हो परंतु उनके विचारों और साधना का आधार शास्त्र नहीं बल्कि आत्मानुभव व सत्य पर आधारित रही। निर्गुण धारा के कवियों ने ईश्वर को निराकार, निर्गुण और अजन्मा–अमर सत्ता के रूप में स्वीकार किया। उनके अनुसार ईश्वर का कोई रूप, आकार या सीमाएँ नहीं हैं। वह अनादि–अनंत है और संपूर्ण सृष्टि में विद्यमान है।

इसी विचारधारा के आधार पर रहस्यवाद का उदय हुआ। रहस्यवाद का मूल तत्व यह है कि परमात्मा को केवल बुद्धि या तर्क से नहीं, बल्कि साधना और अनुभव से जाना जाता है। कबीर की साधना इसी रहस्यवादी दृष्टिकोण पर आधारित थी। कबीर दास कहते हैं कि सच्चा अध्यात्म हमें अन्दर से बदल देता है और उसे परम सत्य से जोड़ता है।

कबीर ने न केवल भक्तिकाव्य की परंपरा को समृद्ध किया, बल्कि भारतीय समाज की जड़बद्ध कुरूतियों, आडंबरों और संकीर्णता पर तीखे प्रहार किए। उनकी भक्ति निर्गुण और निराकार ईश्वर पर केन्द्रित थी। साथ ही उनका अध्यात्मवाद तात्विक गूढ़ताओं से अधिक अनुभव और साधना पर आधारित था।

कबीर की निर्गुण भक्ति का स्वरूप–

भारतीय भक्ति साहित्य में निर्गुण भक्ति की धारा का विशेष स्थान है। जहां सगुण भक्ति में ईश्वर को मूर्त रूप में पूजा जाता है, वहीं निर्गुण भक्ति में ईश्वर को निराकार, अजन्मा और अनादि शक्ति माना गया है। संत कबीर, दादू, रैदास और बाकी संत कवियों ने निर्गुण भक्ति के माध्यम से मानव समाज को सरल, सहज और व्यवहारिक साधना का मार्ग दिखाया। कबीर ने कहा कि उस परमसत्ता तक पहुंचने के लिए किसी बाहरी कर्मकाण्ड़ या आडंबर की आवश्यकता नहीं है, बल्कि आंतरिक साधना और नाम स्मरण ही सबसे बड़ा साधन है।

भक्ति आंदोलन में दो धाराएं प्रमुख रहीं हैं– सगुण भक्ति व निर्गुण भक्ति। सगुण भक्ति में ईश्वर के साकार रूप स्वीकार किया गया है और राम व कृष्ण की पूजा परंपरा का विकास हुआ।निर्गुण भक्ति में ईश्वर को निराकार, गुणातीत और असीम माना गया है।

निर्गुण भक्ति का स्वरूप–

निर्गुण भक्ति ईश्वर के उस रूप की साधना है जो निराकार, असीम और सर्वव्यापी है। इस भक्ति में ईश्वर को किसी विशेष मूर्ति, मंदिर या पूजा–पद्धति में नहीं बांधा गया है। इसमें विश्वास रखने वाले लोगों का मानना था कि ईश्वर तो हर कहीं विद्यमान है। ईश्वर को केवल सच्चे हृदय, प्रेम और नाम–स्मरण से ही पाया जा सकता है। इसलिए संत काव्य में निर्गुण भक्ति को एक आंतरिक और अनुभवजन्य साधना के रूप में वर्णित किया गया है।

निर्गुण भक्ति के तत्व–

- **नामजप–** निर्गुण भक्ति का प्रथम और सबसे प्रमुख तत्व है नाम स्मरण करना। संतो का मानना है कि नाम स्मरण से ही भक्ति व मुक्ति मिल सकती है और मन की शुद्धि होती है। जिससे साधक ईश्वर के अधिक निकट पहुंच जाता है। इसीलिए संतों ने बाहरी कर्मकाण्ड की अपेक्षा 'रामनाम' को ही श्रेष्ठ बताया।

- **मानसिक भक्ति–** मानसिक भक्ति निर्गुण भक्ति का दूसरा आधार है। यह भक्ति किसी बाहरी कर्मकाण्ड या दिखावे पर निर्भर नहीं करती है और ना ही किसी कठोर नियम या अनुशासन के अंतर्गत आती है। इसमें साधक अपने मन में ईश्वर का स्मरण करता है और कहीं न कहीं एक आत्मिक जुड़ाव महसूस करने लगता है। उस समय कबीर ने पूर्व से चली आ रही पुजा पद्धति को दरकिनार कर भक्ति का सरल और सुन्दर रूप सबके समक्ष रखा।

- **प्रेममयी भक्ति–** प्रेममयी भक्ति निर्गुण भक्ति का तृतीय प्रमुख तत्व है। जब साधक उस परमसत्ता के प्रेम में डूब जाता है तब वह मदमस्त हो जाता है। उसे उनके अलावा कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ता और वह साधक प्रेममय हो जाता है। उसका तन–मन ईश्वर के प्रेम में रंग जाता है और वह संसारिक मोह से निकल जाता है। संतों के अनुसार इस ईश्वरीय प्रेम की खुमारी इतनी प्रबल होती है कि वह कभी खत्म नहीं होती। कबीर ने इस अवस्था को दोहे में इस प्रकार लिखा है–

हरि रस पिया जानिए, जे कबहुँ न जाय खुमार।

मैमता घूमत फिरै, नाही तन की सार।।

निर्गुण भक्ति से भारतीय समाज को एक नई दिशा व दशा प्राप्त हुई। इसके द्वारा जांति–पाति, ऊँच–नीच और दिखावे का विरोध किया गया। इसके साथ ही साधना को ह्रदय की पवित्रता और ईश्वरीय प्रेम से जोड़ा गया। इस भक्ति में समाज को यही शिक्षा दी कि सच्ची भक्ति केवल आंतरिक अनुभव व प्रेम से ही संभव है।कबीर ने निर्गुण भक्ति का मार्ग अपनाया और वह स्वयं उसके प्रमुख प्रवक्ता थे। वह कहते हैं–

- परमात्मा का आकार या रूप नहीं है और अवतार की अवधारणा को भी कबीर ने नकार दिया।
- कबीर के अनुसार परमात्मा सर्वव्यापी है और छोटे से छोटे व बड़े से बड़े रूप में हर जगह विद्यमान है।
- कबीर कहते हैं कि उस परमात्मा को पाने का मार्ग बहुत सरल है जैसे– नाम स्मरण करना, साधना व आत्मिक अनुभव से उन्हें पाया जा सकता है।

कबीर ने कहा है कि–

"जो ब्रह्मंडे सोई पिंडे, जो खोजे सो पावै।"

यहाँ इसका तात्पर्य यह है कि जो भी संसार में हम महसूस करते हैं वह सब कुछ हम हमारे भीतर भी पा सकते हैं। केवल वह हमारी इच्छाशक्ति पर निर्भर करता है।

इनकी भक्ति का आधार प्रेम व अनुभव रहा है। उनके अनुसार केवल मूर्ति पूजने, शास्त्र पढ़ने या कर्मकाण्ड़ करने मात्र से ईश्वर नहीं मिलते हैं।सच्चा भक्ति मार्ग वह है जिसमें मनुष्य अपने भीतर झांककर आत्मा को शुद्ध करे और प्रेम व सच्चे मन से परमात्मा का ध्यान करे।कबीर ने राम के नाम का स्मरण करने को ही मुक्ति का माध्यम माना है।

उन्होंने कहा भी है कि–

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय।"

कबीर ने शास्त्रों से अधिक महत्व अनुभव को दिया है व ज्ञान से अधिक प्रेम को महत्व दिया है।

कबीर का अध्यात्मवाद–

कबीर का अध्यात्मवाद मानव केंद्रित और अनुभववादी रहा है।

- उनके लिए आत्मा और परमात्मा का मिलन ही जीवन का अंतिम उद्देश्य है।
- कबीर आत्मा को परमात्मा का अंश मानते हैं और वह कहते भी हैं कि आत्मा जब अपनी विशुद्ध स्थिति में पहुंचती है तभी ईश्वर से मिल पाती है।
- उनका अध्यात्म किसी दार्शनिक जटिलताओं में नहीं फंसा हुआ बल्कि बहुत ही व्यवहारिक, लोकजीवन से जुड़ा हुआ व अत्यंत सरल रहा है।

कबीर कहते हैं–

"माटी एक अनेक रूपी, कैसे बिंद बढ़ाई।

माटी ही माटी मिले, कबीर कहे समझाई।"

अर्थात् संपूर्ण संसार के जीव, कण उसी परम सत्ता का अंश है और अंत में उसी में समाहित हो जाते हैं।

कबीर की निर्गुण भक्ति की विशेषताएं–

- **निराकार ईश्वर की मान्यता–** ईश्वर को मूर्तियों में खोजना या फिर मंदिर व मस्जिद में नहीं खोजा जा सकता। वह तो सर्वत्र हैं सबके हृदय में विराजमान हैं।

- **प्रेम का महत्व–** वह कहते हैं कि प्रेम के बिना भक्ति संभव नहीं है। जहां प्रेम नहीं है वहां भक्ति व अध्यात्म की कल्पना व्यर्थ है। भक्ति का सार केवल प्रेम है।

- **समाज–सुधार की दृष्टि–** कबीर ने अपनी भक्ति को केवल खुद तक सीमित न रखकर मानवता का संदेश दिया एवं अपने अनवरत प्रयासों से धर्म, जाति व समुदायों की बेड़ियों को तोड़ दिया।

- **अनुभववादी दृष्टि–** कबीर दास ने किसी पूर्व धारणा पर आंख मूंदकर विश्वास ना करते हुए प्रत्यक्ष साक्ष्यों के आधार पर ही अपने सिद्धांत दिए।

- **नाम स्मरण की प्रधानता–** वह कहते हैं कि परमात्मा को प्राप्त करना है तो केवल उसका एक ही माध्यम है और वह है नाम स्मरण करना।

कबीर का अध्यात्म और समाज–

कबीर के अध्यात्म का अर्थ केवल आत्मा–परमात्मा के मिलन को लेकर ही नहीं है बल्कि वह सामाजिक गहराई से जुड़ा हुआ है। उन्होंने बाह्य आडंबर, पाखण्ड, तीर्थयात्रा, जाति–पाँति व मूर्तिपूजा का खुलकर विरोध किया है।सत्य, करूणा, प्रेम, दया, सेवा व समानता को कबीर ने प्रथम धर्म माना है।

कबीर कहते भी हैं कि–

"जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान।

मेल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।"

जिसमें वह स्पष्ट कहते हैं कि मनुष्य की पहचान उसकी जाति या धर्म से नहीं होनी चाहिए बल्कि उसके ज्ञान और आचरण के आधार पर होनी चाहिए।

कबीर के अध्यात्म की प्रासंगिकता–

वर्तमान समय में भी कबीर का अध्यात्म उतना ही प्रासंगिक है जितना उस समय में था। आज के समय में धार्मिक कट्टरता बहुत बढ़ गई है और धर्म की आड में लोग जाने कितने ही तरह के आडंबर किया करते हैं। इस समय पर कबीर के वचन मार्गदर्शक की तरह हैं। उनकी वाणी से हम यही सीखते हैं कि जिस ईश्वर की खोज हम मंदिरो या मस्ज्दों में करते फिरते हैं वही ईश्वर हमें हमारे हृदय में मिलते हैं। बशर्ते यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि हम किसी के लिए कैसा सोचते हैं।भक्ति हमें समाज से भागना नहीं सीखाती बल्कि समाज में रहकर समानता, प्रेम व भाईचारे की भावना से रहना सीखाती है।

कबीर की निर्गुण भक्ति और अध्यात्मवाद हमारे समाज की एक विशेष धरोहर है। जिसने भक्ति आंदोलन को एक नई दिशा दी। कबीर ने समाज को ईश्वर भक्ति का एक नया रास्ता दिखाया। उनकी भक्ति को केन्द्र बिन्दु परमात्मा का नाम–स्मरण, प्रेम एवं अनुभव रहा है और जिसका आधार आत्मशुद्धि व समानता रहा है। समाज को कबीर की वाणी से सदियों तक यही प्रेरणा मिलती रहेगी कि उस परमसत्ता को पाने के लिए बाहरी दिखावे की नहीं बल्कि आत्मिक अनुभूति, सत्यता व पवित्र प्रेम की

आवश्यकता है। उस समय संतो के द्वारा नाम–स्मरण को ही समस्त साधना का आधार स्वीकार किया गया है। अजन्मा, अनन्त ब्रह्म, परमसत्ता निगुर्ण भक्ति का मूल आधार है।

"हरि रस पीया जानिए, जे कबहुं न जाय खुमार।

मैमंता घूमत फिरै नाहीं तन की सार।।"

निर्गुण भक्ति का सार यही है कि ईश्वर निराकार और सर्वव्यापी है। उसे पाने के लिए बाहरी दिखावे की आवश्यकता नहीं है। यदि हम ईश्वर का नाम स्मरण करते हैं और मानसिक साधना व प्रेम से भी उनको पाया जा सकता है। संत कवियों ने प्रेत्येक वर्ग के लिए अध्यात्म व भक्ति को सरल व सहज बना दिया। वास्तविकता तो यही है कि निर्गुण भक्ति भारतीय संत साहित्य की आत्मा है जिसने भक्ति को आत्मिक शांति और मानव कल्याण का मार्ग बना दिया।

लोका तुम्हें जे कहत नंद कौ नंदन नंद कहौ धुं काके रे।

घरनि अकास दोऊ नहीं होते, तब यह नंद कहाँ थौ रे।।

जॉभे मरै न सेंकटि आवै, नाव निरंजन जाकौ रे।

अबिनासी उपजै नहिं बिनसै, संत सुजस कहै ताको रे।।

यह पद कबीर की निर्गुण भक्ति और निरंजन की अवधारणा पर आधारित है। कबीर उन मान्यताओं पर प्रश्न उठाते हैं जो ईश्वर को केवल किसी एक पारिवारिक, जातीय या सांस्कृतिक पहचानों से बाँध देती हैं– जैसे कृष्ण को नंद के पुत्र के रूप में केवल एक मानवीय रूप तक सीमित कर देना।कबीर कहते हैं– सत्य ईश्वर कहीं बडा है, नंद–नंदन जैसे सामाजिक–पारिवारिक संबंधों में नहीं समा सकता।

"लोका तुम्हें जे कहत नंद कौ नंदन"

इस पंक्ति में कबीर सीधे उस प्रवृति को चुनौती देते हैं जिसमें ईश्वर को किसी विशिष्ट सामाजिक या पारिवारिक पहचान में बाँध दिया जाता है– जैसे कृष्ण को नंद के पुत्र के रूप में देखना। यह पहचान स्वयं में गलत नहीं, लेकिन कबीर का मानना है कि यह ईश्वर के व्यापक, अनंत और निर्गुण रूप को सीमित कर देती है।

आध्यात्मिक अर्थ

- परिवार का संबंध देह से है
- देह सीमित है
- सीमित ईश्वर नहीं हो सकता

इसलिए 'नंद का नंदन' कहना ईश्वर को एक स्थूल शरीर और पारिवारिक संबंधों में सीमित करने जैसा है।कबीर यहाँ अवतारवाद की आलोचना नहीं बल्कि अवतारवाद की सीमाओं को उजागर कर रहे हैं। वह कहते हैं–

जो अनंत है, वह पुत्र कैसे हो सकता है?

जो जन्मरहित है, उसे जन्म से क्यों बांधा जाए?

यह प्रश्न वेदान्त के उस सिद्धांत से मेल खाता है जिसमें ब्रह्म को 'अजो नित्यः शाश्वतः' कहा गया है।

'घरनि अकास दोऊ नहीं होते' कबीर ने घर और आकाश के माध्यम से एक गहरा आध्यात्मिक रूपक प्रस्तुत किया है।

- **घरः** सीमित देह, परिस्थितियां, स्थान
- **आकाशः** अनंत, निर्बंध, सर्वव्यापक परमात्मा

कबीर कहते हैं कि सीमित और अनंत एक ही स्थान में एकसाथ मौजूद नहीं हो सकते। यदि ईश्वर को किसी घर या शरीर में बांध दिया जाए तो वह सीमित हो जाएगा और उसकी सर्वव्यापकता नष्ट हो जाएगी।

दार्शनिक दृष्टि

यह पंक्ति अद्वैत वेदांत, सूफी–मत और कबीरपंथ की मूल धारणा को प्रतिबिंबित करती है–

ईश्वर देह धारी नहीं।

वह चेतना है, स्वरूप नहीं।

'तब यह नंद कहाँ थौ रे' यह प्रश्न ईश्वर के देह आधारित स्वरूप के खंडन का तर्कसंगत परिणाम है। कबीर यह नहीं पूछ रहे कि नंद बाबा कहां हैं; बल्कि यह कह रहे हैं कि–यदि ईश्वर अनंत है तो उसे नंद का पुत्र मानना कैसे उचित होगा? अगर वह नंद का पुत्र है तो अनंत कैसे हो सकता है?इस तरह कबीर मध्यकालीन धार्मिक चेतना में व्याप्त देह–अवतारकेंद्रित भक्ति पर एक पैना प्रश्नचिन्ह लगाते हैं।

'जॉभे मरे न सेंकटि आवे'– साधना का मनोवैज्ञानिक और आध्यात्मिक अर्थयहाँ 'मरना' भौतिक मृत्यु नहीं है। कबीर का प्रसिद्ध मत है कि–

"जीवन में ही मरना"– अहंकार, भ्रम, माया और देहाभिमान का मरना।

जब साधकः

- "मैं" का अभिमान छोड़ देता है
- इच्छाओं का नाश कर देता है
- लोभ–मोह से मुक्त हो जाता है

- भीतरी मृत्यु का अनुभव करता है

तब उसके लिए कोई संकट नहीं बचता। यही जीवन्मुक्ति का सिद्धांत है।

सूफी और योग परंपरा से साम्य

कबीर का यह विचार सूफियों के 'फना' सिद्धांत और योग के 'अहं–नाश' से अत्यंत निकटता रखता है।

'नाव निरंजन जाकौ रे' निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन

यह पंक्ति कबीर के निर्गुण संप्रदाय के केन्द्रीय सिद्धांत को उद्घाटित करती है–

'निरंजन' वह शक्ति है जो–

- तीन गुणों (सत्व, रज, तम) से परे है
- नित्य, अनंत, अचल और अकर है
- न पैदा होता है न मरता है
- न उसे मूर्ति में खोजा जा सकता है न अवतार में।

यहाँ **'नाव'** का अर्थ है–सहारा, पथ, साधन।

कबीर कहते हैं कि जो साधक अपनी आध्यात्मिक यात्रा को निरंजन में स्थिर कर लेता है, उसे संसार के दुख, भ्रम और संकट प्रभावित नहीं कर पाते हैं।

'अबिनासी उपजै नहिं बिनसै'–अस्तित्व–दर्शन की घोषणा। यह वाक्य ब्रह्म–सत्ता का साक्षात् प्रतिपादन है।कबीर स्पष्ट करते हैं–

- अविनाशी जन्म नहीं लेता क्योंकि जन्म लेना परिवर्तनशीलता का संकेत है।
- अविनाशी नाश नहीं होता क्योंकि विनाश भी परिवर्तन का रूप है।

इस तरह कबीर 'परमसत्ता' को बदलने वाली, ऐतिहासिक, समयबद्ध सत्ता नहीं मानते, बल्कि उसे शाश्वत, निरंतर, अचल, अजात और अभेद मानते हैं।

अद्वैत वेदांत से साम्यता

यह पंक्ति 'न जायते म्रियते वा कदाचित्' – उपनिषदों की इसी घोषणा से मेल खाती है।

'संत सुजस कहै ताको रे' – संत परंपरा का मूल आधार

यहाँ कबीर बताते हैं कि संत वही है जोः

- देहधारी ईश्वर की महिमा नहीं
- जन्मरहित, निराकार, निर्गुण ब्रह्म की वाणी कहता है।

'सुजस' शुभ और सत्य गुणों का गायन

संत का कार्य लोक मिथकों का वर्णन करना नहीं बल्कि सत्य का उद्घोष करना है। इसलिए कबीर स्वयं को भी 'संत–परंपरा' का वाहक इसलिए मानते हैं क्योंकि उनका ईश्वर अनुभवजन्य और निर्गुण है।यह संपूर्ण पद कबीर की चेतना के निम्न आयामों को स्पष्ट करता है–

1. **अवतारवाद का खण्ड़न–** कबीर अनंत ईश्वर को किसी पारिवारिक पहचान या अवतार रूप में सीमित नहीं मानते।
2. **निर्गुणवाद का प्रतिपादन–** निरंजन/ वास्तविक परम चेतना।

3. **अहंकार–नाश का महत्व–** साधक की भीतरी मृत्यु ही उसकी आध्यात्मिक यात्रा का आरंभ है।

4. **सत्य की दार्शनिक समझ–**परम तत्व जन्म और मृत्यु ही उसकी आध्यात्मिक यात्रा का आरंभ है।

5. **संत की पहचान–**संत वही है जो सत्य का गायन करे, मिथकीय रूपकों का नहीं।

इस पद में कबीर मध्यकालीन भक्ति संस्कृति की उस सीमित सोच को तोड़ते हैं जो ईश्वर को देह, जाति, परिवार या अवतार तक सीमित कर देती है। वे मनुष्य को निर्गुण चेतना की ओर ले जाते हैं जहां ईश्वर न नाम से बंधा है, न ही रूप से। कबीर का यह पद आज भी उतना ही प्रासंगिक है क्योंकि यह मनुष्य को आडंबर, कल्पना और मिथकीय सीमाओं से ऊपर उठाकर सत्य–अनुभूति की ओर अग्रसर करता है।

यह पद आध्यात्मिक अनुभव, दार्शनिक गहराई और मानवीय चेतना, इन तीनों का अनूठा समन्वय है और कबीर को "अनुभव के कवि" सिद्ध करता है।

कबीर माया पापणीं, हरि सूँ करे हराम।

मुख कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।

कबीर इस दोहे में माया अर्थात् संसारिक मोह, लालच, लोभ और भौतिक आकर्षणों की आलोचना करते हैं। वह मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन में माया की बाधा को स्पष्ट करते हैं। उनके लिए माया केवल धन या भौतिक वस्तुएं नहीं हैं बल्कि वह मानसिक अवस्था है जो मनुष्य को लोभ, मोह, अहंकार, स्वार्थ, ईर्ष्या और भोग–विलास की ओर खींचती है। उनका कहना है कि माया मनुष्य के लिए एक बड़ा पाप है, इसका प्रभाव ऐसा है

कि यह मनुष्य को ईश्वर से दूर कर देती है। जब इंसान माया में फँस जाता है– धन, पद, प्रतिष्ठा और स्वार्थ की इच्छा बढ़ जाती है– तो वह परमात्मा का स्मरण या भक्ति करने में असमर्थ हो जाता है। माया मनुष्य को सांसारिक आकर्षणों में उलझाकर उसे हरि से दूर कर देती है और इस प्रकार वह ईश्वर–मार्ग में सबसे बड़ा अवरोध बन जाती है।[1]

कबीर कहते है कि माया इतनी कपटी है कि हरि का नाम लेना भी उसे बुरा लगता है। मन में जब बुरे विचार, स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष और कुतर्क भर जाते हैं तो मनुष्य के मुख से राम का सच्चा नाम भी नहीं निकल पाता है। उसका मन कठोर हो जाता है और वह ईश्वर की ओर अग्रसर नहीं हो पाता है।कबीर माया को पापनी अर्थात् पाप करवाने वाली कहते हैं, क्योंकि माया मनुष्य के विवेक को कुंद कर देती है। माया का आकर्षण ऐसा होता है कि मनुष्य ईश्वर से दूर होने लगता है, उसकी भक्ति में बाधा आने लगती है। यह बाहरी शत्रु नहीं बल्कि मनुष्य के भीतर बैठा हुआ अदृश्य शत्रु है, जो पवित्र और उच्च विचारों को दबा देता है।

कबीर कहते हैं कि जब मनुष्य का मन कुमति– गलत विचारों और कुतर्कों से भर जाता है, तो उसका मन कठोर हो जाता है, जैसे लोहे को कड़ा कर दिया जाए। ऐसे में व्यक्ति के मुख से ईश्वर का सच्चा नाम भी नहीं निकल पाता। "मुख कड़ियाली कुमति की" का तात्पर्य है– मन और वाणी दोनों कठोर और अशुद्ध हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति के जीवन से नम्रता, करूणा, प्रेम और सत्य का स्थान समाप्त हो जाता है।

अर्थात् ईश्वर से दूरी का कारण कोई बाहरी बाधा नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर की माया, लोभ और कुमति है। जब तक मन शुद्ध नहीं होगा, तब तक भक्ति, प्रेम और सत्य का मार्ग संभव नहीं हो सकता। माया के प्रभाव में

मनुष्य की वाणी और व्यवहार कटु हो जाते हैं तथा उसके भीतर करूणा और विन्रमता का लोप हो जाता है।[2]

ईश्वर का स्मरण केवल शब्दों से नहीं, बल्कि शुद्ध मन और भाव से होता है। माया से ग्रस्त मनुष्य मात्र बाहरी दिखावे– चिन्ह, वेश, पूजा–पाठ, मंदिर–मस्जिदों के प्रतीकों में उलझा रहता है परंतु भीतर से रिक्त और अशांत रहता है। कबीर याद दिलाते हैं कि वास्तविक भक्ति बाहरी अनुष्ठान नहीं बल्कि आंतरिक शुद्धता का परिणाम है।

कबीर का संदेश स्पष्ट है कि मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु कोई बाहरी शक्ति नहीं, बल्कि उसका अपना अंधा लोभ और मोह है। जब तक मनुष्य अपने भीतर की माया और कुमति को नहीं त्यागता, तब तक भक्ति के मार्ग पर आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए कबीर मन की सफाई, विचारों की स्पष्टता और ईमानदार आत्म–चिंतन को भक्ति का प्रथम चरण मानते हैं।

इस दोहे के माध्यम से कबीर मनुष्य को चेतावनी देते हैं कि माया और कुमति आध्यात्मिक उन्नति की सबसे बड़ी बाधाएं हैं। जब तक मन शुद्ध नहीं होता और लोभ–मोह का त्याग नहीं होता, तब तक ईश्वर का नाम भी सार्थक नहीं हो सकता। इसलिए आत्मा की शांति और सच्ची भक्ति के लिए मन का निर्मल होना अनिवार्य है। वस्त्र, वेश, मंदिर और पूजा से अधिक महत्व मन की पवित्रता का है।

हमरा झगरा रहा न कोऊ।

पंडित मुलाना छाडे दोऊ।।

इस दोहे में कबीर समाज में व्याप्त धार्मिक भेदभाव, कट्टरता और संप्रदायगत संघर्ष पर प्रहार करते हैं। वे कहते हैं कि उनका किसी से कोई झगड़ा नहीं है– न हिंदुओं के पंडितों से और न मुसलमानों के मुल्लाओं से।

कबीर स्वयं को इन दोनों धार्मिक समूहों से परे रखते हैं, क्योंकि उनका लक्ष्य बाहरी कर्मकाण्ड, आडंबर और संकीर्ण मान्यताओं में उलझना नहीं, बल्कि सत्य और परमात्मा की खोज है। कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि उनका किसी से व्यक्तिगत या वैचारिक विरोध नहीं है। वे न तो किसी व्यक्ति से शत्रुता रखते हैं और न ही किसी समुदाय के प्रति द्वेषभाव। कबीर की यह घोषणा उनके व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण को प्रकट करती है, जिसमें समस्त मानव समान रूप से स्वीकार्य है।[1]

कबीर का स्पष्ट संदेश है कि ईश्वर न हिंदुओं का है न मुसलमानों का– वह एक सार्वभौमिक, निराकार और सर्वव्यापक शक्ति है, जिसे धर्मों की सीमाओं में बांधा नहीं जा सकता। पंडित और मुल्ला दोनों अपने–अपने मत और रीति–रिवाजों में उलझे रहते हैं और इन्हीं मतभेदों से झगड़े और संघर्ष पैदा होते हैं।कबीर कहते हैं कि सच्चा साधक इन विवादों से दूर रहता है क्योंकि ईश्वर तक पहुंचने का मार्ग प्रेम, सत्य, आत्मज्ञान और सरलता है– न कि तर्क, बहस या बाहरी धार्मिक प्रतीक। उनका विश्वास यह है कि मनुष्य अपने मन को निर्मल और भाव को पवित्र बनाकर ही ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है न कि जाति, धर्म या पंथ के नाम पर झगड़ा कर।इस दोहे का गहरा अर्थ यह है कि–

- धर्मों की लड़ाई अनावश्यक और अविवेकपूर्ण है
- ईश्वर को पाने के लिए संप्रदाय नहीं, बल्कि प्रेम और भक्ति चाहिए
- पंडित और मुल्ला बाहरी कर्मकाण्ड में उलझे हैं, जबकि कबीर आंतरिक साधना और अनुभव को महत्व देते हैं
- झगड़ा छोड़कर मनुष्य को आत्मा की शांति और एकता की ओर चलना चाहिए

आधुनिक सन्दर्भ–

आज के समय में भी धर्म के नाम दंगे, विवाद, राजनीतिक संघर्ष और सामाजिक विभाजन जारी है। कबीर का यह दोहा हमें संदेश देता है कि धर्म का उद्देश्य मनुष्यता, प्रेम और सद्भाव है न कि संघर्ष या घृणा। यदि समाज कबीर की शिक्षा को अपनाए तो धार्मिक कट्टरता समाप्त होकर सामाजिक एकता और सहिष्णुता की स्थापना हो सकती है।कबीर निर्गुण भक्ति की उस परंपरा को पुष्ट करते हैं जिसमें ईश्वर न मंदिर में सीमित है, न मस्जिद में। कबीर का ईश्वर अनुभव और आत्मबोध का विषय है। अतः वे ऐसे किसी भी धार्मिक नेतृत्व को अस्वीकार करते हैं जो मनुष्य को सत्य की सीधी अनुभूति से दूर करता है।[2]

कबीर का यह दोहा मानवता का संदेश है जो बताता है कि ईश्वर का मार्ग विवाद नहीं, बल्कि सद्भाव और प्रेम से होकर गुजरता है। सच्चा धर्म वह है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़े न कि अलग करे।

काल चक्र चक्की चलै, बहुत दिवस औ रात।

सगुण अगुण दोऊ पाटला, तामें जीव पिसात।।

कबीर का यह दोहा समय, अस्तित्व और मानव–जीवन की अनिवार्य गति को अत्यंत गहन दार्शनिक और प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करता है। यह दोहा केवल समय की क्षरणकारी शक्ति को व्यक्त नहीं करता, बल्कि यह बताता है कि जीव कैसे दोनों प्रकार की प्रकृतियों–सगुण और निर्गुण– के बीच पिसता हुआ जन्म–मरण के चक्र में बंधा रहता है। कबीर यहां आध्यात्मिक मुक्ति की ओर संकेत करते हैं।

"काल चक्र चक्की चलै"– समय का अनंत चक्र

पहली पंक्ति में कबीर समय को 'चक्की' की तरह बताते हैं–

- चक्की लगातार चलती रहती है
- अपने दोनों पाटों के बीच जो भी आता है उसे पीस देती है
- उसे न दिन का भेद पता है और न ही रात का भेद
- न कोई रूकावट, न थकावट

"काल चक्र" से तात्पर्य है–

- जन्म–मरण का चक्र
- समय की अनंत गति
- प्रकृति का नियम
- अस्तित्व की निरंतरता

यहां कबीर का संकेत हैः

हर प्राणी समय के नियम से संचालित है। चाहे राजा हो या रंक, ज्ञानी हो या अज्ञानी– काल सबको समान रूप से प्रभावित करता है। यह चक्की चलते हुए किसी को नहीं छोड़ती है।

"बहुत दिवस औ रात"– समय की निरंतरता और निष्पक्षता

यह वाक्य इस विचार को सुदृढ़ करता है कि–

- समय निरंतर है,
- वह रूकता नहीं है,
- चाहे जीव कुछ भी कर ले।

दिन–रात की गति मानव जीवन के उतार–चढ़ाव, सुख–दुख, आशा–निराशा का रूपक है। कबीर कहते हैं कि समय अपनी गति में

इतना विशाल है कि मनुष्य का जीवन उसके सामने अत्यंत क्षुद्र प्रतीत होता है।

"सगुण अगुण दोऊ पाटला"– दो पाटों का दार्शनिक अर्थ

कबीर चक्की के दो पाटों की तुलना करते हैं–

सगुण (गुणयुक्त, रूपवान, साकार ईश्वर/व्यवहारिक संसार)

- रूप, रंग, नाम, धर्म, कर्म, समाज, संबंध, इंद्रिय–बोध– सभी सगुण की श्रेणी में आते हैं।
- यह वह संसार है जहां मनुष्य कर्म, मोह, माया और संघर्षों में उलझा रहता है।

निर्गुण (निराकार, गुणरहित, आध्यात्मिक चेतना)

गहरी साधना, ध्यान, ईश्वर का निराकार स्वरूप, मौन, ब्रह्म–निर्गुण का क्षेत्र है।कबीर कहते हैं कि यह संसार एक चक्की है जिसके दोनों पाट सगुण और निर्गुण हैं।दोनों के बीच का संघर्ष, द्वंद्व, विरोधाभास– इसी में जीव फँसा हुआ है।

इस रूपक का दार्शनिक अर्थः

मनुष्य न केवल बाह्य संसार से दबा हुआ है, बल्कि उसकी अपनी चेतना, इच्छाएं, कामना और आध्यात्मिक खोज भी उसे लगातार प्रभावित करती रहती है। इन दोनों के बीच खिंचता हुआ जीव जन्म–मरण, कर्म–बंधन और मोक्ष की खोज में संघर्ष करता है।

"तामें जीव पिसात"– जीवन की त्रासदी और आध्यात्मिक संकेत

यह पंक्ति दोहे का केंद्रीय भाव है। कबीर कहते हैं–जब चक्की चलती है,और उसके दोनों पाट चलते हैं,तब उसके बीच में पड़ा कोई भी कण, दाना– बच नहीं सकता। इसी प्रकार–

जीव जीवन के संघर्षों, इच्छाओं, मोह, पाप–पुण्य, आशा–निराशा, कर्म–फल, रोग–शोक में पिसता रहता है।वह कभी सगुण की ओर भागता है, तो कभी निर्गुण की ओर झुकता है।परंतु मुक्ति तभी संभव है जब वह पाटों के मध्य से हटकर साक्षीभाव अपनाए।कबीर की यह व्याख्या केवल अस्तित्व की पीड़ा नहीं, बल्कि आध्यात्मिक समाधान की ओर संकेत भी करती है–**जब तक मनुष्य 'जीवन' के द्वंद्व में है, वह पिसता रहेगा।**

मोक्ष, मुक्ति, शांति–इनका साधन भीतर की जागृति है।

दार्शनिक विश्लेषण– काल, प्रकृति और जीव

काल– अनंत, गतिशील शक्ति

- किसी के लिए नहीं रूकता
- सबको समान रूप से प्रभावित करता है
- अपने नियम से चलता है

सगुण और निर्गुण– द्वंद्व का रूप

- मनुष्य को दोनों की आवश्यकता है
- परंतु दोनों के आकर्षण और विरोधाभास में जीव नष्ट होता रहता है
- जीवन, मृत्यु, कर्म, धर्म–सब इसी द्वंद्व का हिस्सा हैं

जीव– चेतना का कण

- जिसका वास्तविक स्वरूप अज्ञान से ढँक गया है
- जो काल–चक्र और द्वंद्व की चक्की में फँसकर पिस रहा है
- जो मोक्ष की तलाश में है, किंतु मार्ग स्पष्ट नहीं है

आधुनिक अर्थ और प्रासंगिकता

यह दोहा आज भी उतना ही सच है–

- समय की दौड़
- प्रतियोगिता
- काम का दबाव
- रिश्तों का तनाव
- भौतिक इच्छाएँ
- मनसिक उलझनें

ये सभी 'चक्की' के पाट की तरह मनुष्य को पीसते हैं।

हम लोग भी–

- कभी कर्म के बोझ में
- कभी इच्छाओं में
- कभी भय में
- कभी आध्यात्मिकता की तलाश में फँसे रहते हैं।

कबीर का संदेश है–

जीवन के पाटों से ऊपर उठकर ही मनुष्य मुक्त हो सकता है।

यह उठान ज्ञान, आत्मबोध, सादगी और सत्य की अनुभूति से आता है।

दोहे का दार्शनिक निष्कर्ष

- समय निरंतर है–उससे कोई नहीं बच सकता।
- संसार और आध्यात्मिकता दोनों का द्वंद्व मनुष्य को पीसता है।

- जीव तभी बचता है ज बवह इन द्वंद्वों से ऊपर उठकर आत्मबोध द्वारा मुक्त होता है।
- कबीर का यह दोहा गहरी अस्तित्ववादी चेतना का प्रतीक है।

सुख के संगी स्वारथी, दुख में रहते दूर।

कहैं कबीर परमारथी, दुख सुख सदा हजूर।।

कबीर का यह दोहा मानव–स्वभाव, सामाजिक संबंधों की वास्तविकता और नैतिक मूल्यों की तीखी समीक्षा प्रस्तुत करता है। इसमें कबीर ने स्वार्थ और परमार्थ के बीच स्पष्ट अंतर रेखांकित किया है तथा यह बताया है कि सच्ची मानवता और नैतिकता की कसौटी सुख में नहीं, बल्कि दुख में दिखाई देती है। कबीर कहते हैं कि संसार में अधिकांश लोग सुख के समय साथ निभाने वाले होते हैं। ऐसे लोग संबंधों को स्वार्थ की दृष्टि से देखते हैं और जहां उन्हें लाभ, सुविधा या आनंद प्राप्त होता है, वहीं तक उनकी मित्रता और निकटता सीमित रहती है।[1]

"सुख के संगी स्वारथी"– स्वार्थपरक संबंधों की पहचान

दोहा की पहली पंक्ति में कबीर कहते हैं कि संसार में अधिकतर लोग सुख के संगी होते हैं, अर्थात् वे केवल तब साथ निभाते हैं जब लाभ, सुविधा या आनंद प्राप्त हो रहा हो। ऐसे लोग स्वार्थी होते हैं–

वे अपने हित को प्राथमिकता देते हैं, संबंधों को साधन के रूप में देखते हैंमित्रता, रिश्तेदारी या सहयोग को लाभ से जोड़कर समझते हैं।कबीर के अनुसार यह दिखावटी और क्षणिक होता है। जैसे ही सुख समाप्त हो जाते हैं, ऐसे संबंध भी समाप्त हो जाते हैं। यह पंक्ति सामाजिक यथार्थ का यथार्थवादी चित्रण करती है।

"दुख में रहते दूर"– संकट में साथ छोड़ देने की प्रवृति

इस पंक्ति में कबीर मानवीय स्वार्थ की सबसे बड़ी कमजोरी को उजागर करते हैं। जब व्यक्ति दुख, संकट, रोग, आर्थिक कठनाई या सामाजिक अपमान में होता है, तब अधिकांश तथाकथित साथी उससे दूरी बना लेते हैं।यह दूरी केवल शारीरिक नहीं होती, बल्कि–

- भावनात्मक उपेक्षा
- स्वेदनहीनता
- सहानुभूति के अभाव का भी प्रतीक है।

कबीर यह संकेत देते हैं कि ऐसे संबंध वास्तविक नहीं होते; वे केवल परिस्थितिजन्य होते हैं।

"कहै कबीर परमार्थी"– सच्चे मनुष्य की पहचान

यहाँ कबीर स्वयं साक्षी भाव से कहते हैं कि परमार्थी व्यक्ति वह है–जो अपने स्वार्थ से ऊपर उठकर सोचता है, जो मानवता, करूणा और सेवा को जीवन का उद्देश्य मानता है, जो संबंधों को लाभ से नहीं संवेदना से जोड़ता है।परमार्थी मनुष्य की दृष्टि व्यापक होती है; वह व्यक्ति के सुख–दुख को साझा करने में ही जीवन की सार्थकता देखता है।

"दुख–सुख सदा हजूर"– सच्चे साथ का आदर्श

यह पंक्ति पूरे दोहे का केंद्रीय भाव है। कबीर कहते हैं कि परमार्थी व्यक्ति–सुख में अहंकार नहीं करता, दुख में मुँह नहीं मोड़ता, हर परिस्थिति में साथ निभाता है।

'हजूर' शब्द निकटता, उपस्थिति और सहभागिता का प्रतीक है। इसका अर्थ है– सच्चा मनुष्य हर समय उपस्थित रहता है, चाहे परिस्थिति

अनुकूल हो या प्रतिकूल। यही स्थायित्व, करूणा और सहानुभूति उसे स्वार्थी मनुष्य से अलग करता है। कबीर की दृष्टि में यही जीवन का नैतिक आदर्श है।[2]

दार्शनिक और नैतिक अर्थ

इस दोहे के माध्यम से कबीर एक नैतिक जीवन–दर्शन प्रस्तुत करते हैं–स्वार्थी संबंध अस्थायी होते हैं, परमार्थी संबंध स्थायी और मानवीय होते हैं, सच्ची मित्रता और मानवता की पहचान संकट की घड़ी में होती है।कबीर के अनुसार समाज तभी स्वस्थ बन सकता है जब लोग स्वार्थ से ऊपर उठकर उक–दूसरे के सुख–दुख में सहभागी बनें।

आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

आज के उपभोक्तावादी और प्रतिस्पर्धात्मक समाज में यह दोहा और भी अधिक प्रासंगिक हो गया है। आधुनिक जीवन में–रिश्ते सुविधा आधारित हो गए हैं, संवेदना कम होती जा रही है, लोग दुख से बचने के लिए संबंध तोड़ लेते हैं।कबीर का यह संदेश हमें याद दिलाता है कि मानवता का मूल मूल्य साथ निभाना है, न कि केवल लाभ उठाना।यह दोहा मानव जीवन के नैतिक मूल्य–बोध का सार प्रस्तुत करता है। कबीर स्पष्ट करते हैं कि–

- स्वार्थी लोग केवल सुख के साथी होते हैं
- परमार्थी व्यक्ति हर परिस्थिति में साथ निभाता है
- सच्ची मानवता दुख और सुख दोनों में समान भाव से उपस्थित रहने में है।

इस प्रकार यह दोहा सामाजिक संबंधों की शुद्धता, नैतिकता और मानवीय संवेदना का सशक्त प्रतिपादन करता है।

संन्दर्भ ग्रंथ

1. शुक्ल, पं. रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, वाराण्सी, नागरी प्रचारिणी सभा।
2. सिंह, डॉ. नामवर, हिन्दी साहित्य की आधुनिक प्रवृतियां, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
3. चतुर्वेदी, डॉ. रामस्वरूप, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, इलाहाबाद, लोकभारती।
4. त्रिपाठी, विश्वनाथ, हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, हैदराबाद, ओरियंट ब्लैकस्वॉन।
5. भारती, धर्मवीर, कबीर का काव्य और दर्शन, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 1972।
6. नागेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1980।
7. द्विवेदी, हजारीप्रसाद (संपादक), कबीर वचनावली, प्रयाग, भारतीय ज्ञानपीठ, 1955।
8. श्यामसुंदर दास (सपां), कबीर ग्रंथावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराण्सी, 2011, पृ. 112।
9. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृ. 97।
10. वासुदेवशरण अग्रवाल, कबीर और उनका युग, भारतीय विद्या भवन, मुंबई, पृ. 84।

11. शुकदेव सिंह, कबीर की निर्गुण भक्ति, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृ. 59।

12. श्यामसुन्दर दास (संपा.), कबीर ग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 2011, पृ. 94।

13. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृ.103।

कबीर की सामाजिक चेतना, जातिवाद, छुआछूत, पाखंड का विरोध

कबीर भारतीय भक्ति आंदोलन के ऐसे संत थे जिन्होंने न केवल धार्मिक स्तर पर, बल्कि सामाजिक स्तर पर भी गहरी चेतना जगाई। वे साधना के साथ–साथ समाज की रूढ़ियों पाखंडों और असमानताओं के कटु आलोचक रहे। उनकी वाणी से समाज को एक नई दृष्टि मिली। वह एक ऐसे समाज सुधारक थे जिनकी काव्यदृष्टि में जीवन के यथार्थ और सामाजिक समस्याओं की गहरी समझ दिखाई देती है। उन्होंने समाज की कुरूतियों का खुलकर विरोध किया जो मानव को मानव से अलग करती थीं।

कबीर के द्वारा जातिवाद की जड़ों पर प्रहार किया गया। उनका कहना था कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसकी जाति से के स्थान पर उसके ज्ञान, आचरण और कर्म से आंकी जानी चाहिए। इनके द्वारा समाज में व्याप्त छुआछूत और ऊँच–नीच की मानसिकता पर भी प्रहार किया गया। इनके द्वारा सभी मनुष्यों को एक समान माना गया क्योंकि सबका सृजन एक ही ईश द्वारा किया गया है। सब मनुष्य एक ही ईश्वर का अंश है इसलिए किसी को भी ऊँचा या नीचा मानना मूर्खता ही है।

"एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले कौन मंदे।"

जातिवाद का विरोध–

कबीर के अनुसार जाति ईश्वर की देन नहीं है इसे मनुष्यों द्वारा अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए बनाया गया है। जो कि एक समाज में

एक विभाजन रेखा के समान है। कबीर कहते है कि हमें किसी भी मनुष्य को कभी उसकी जाति से नहीं देखना चाहिए बल्कि उसके आचरण, ज्ञान और कर्म के अनुसार देखना चाहिए।

"जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान।

मेल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान।।"

उपर्युक्त दोहे में कबीर कहते हैं कि मनुष्य की जाति देखने से कोई लाभ नहीं है हमें केवल उनका आचरण और व्यवहार देखना चाहिए। जिस प्रकार तलवार का मूल्य उसकी धार से होता है, न कि उसकी म्यान से, वैसे ही मनुष्य की पहचान जाति से नहीं, बल्कि उसके गुणों और ज्ञान से होती है।

कबीरदास ने जातिवाद के विरूद्ध कठोर आवाज उठाई है और जिसको समाज में घुण की तरह बताया। कबीर कहते हैं कि यह जाति व्यवस्था प्रगति पथ में रूकावट की तरह है जो कि एक गंभीर समस्या है। कबीर के काव्य में जातिवाद की खूब आलोचना देखने को मिलती है। जिसमें यह भी बताया जाता है कि इसके आधार पर किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन नहीं होना चाहिए।

कबीर ने उस समय के समाज में व्याप्त जातिवाद का अत्यंत प्रखर विरोध किया। मध्यकालीन भारतीय समाज जाति, ऊँच–नीच और सामाजिक भेदभाव से ग्रस्त था। जन्म के आधार पर मनुष्य की श्रेष्ठता और नीचता निर्धारित की जाती थी और यही व्यवस्था समाज में अन्याय और असमानता का कारण बनी हुई थी। कबीरदास ने इन कुरूतियों पर प्रहार किया और मानव–एकता, समानता तथा प्रेम का संदेश दिया।कबीर के अनुसार मनुष्य की वास्तविक पहचान उसकी जाति से नहीं, बल्कि उसके कर्मों और गुणों

से होती है। उन्होंने कहा कि ईश्वर ने किसी को ऊँचा–नीचा नहीं बनाया, बल्कि सभी मनुष्य एक ही स्त्रोत से उत्पन्न हुए हैं और सबके भीतर वही आत्मा विद्यमान है।

"जाति न पूछो साधु की" दोहे में कबीर स्पष्ट कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति की जाति मायने नहीं रखती बल्कि उसका ज्ञान, चरित्र और कर्म मायने रखता है। जैसे तलवार का मूल्य उसकी धार से होता है, म्यान से नहीं उसी तरह मनुष्य का मूल्य उसके आचरण से होता है जन्म से नहीं।कबीर ने उस समय के उस समय के धार्मिक और सामाजिक पाखंडियों पर व्यंग्य किया जो ब्राह्मण को श्रेष्ठ और शूद्र को नीच मानते थे। उन्होंने साहसपूर्वक कहा–

"एक ही माटी के सब बने, कुम्हार ज्यों गारे देह।

कौन बामन, कौन शूद्र, कह कबीर यह खेल अनेह।।"

इस दोहे के माध्यम से कबीर बताते हैं कि सब मनुष्य एक ही मिट्टी से बने हैं, सबका शरीर एक समान है। इसलिए जाति के आधार पर कोई ऊँचा या नीचा नहीं हो सकता।

कबीर ने सदैव इस बात का समर्थन किया कि जातिगत भेदभाव को समाज में किसी भी प्रकार से स्थान नहीं मिलना चाहिए। कबीर ने प्रमुख रूप से समानता व भाईचारे का संदेश दिया है और साथ ही यह भी कहा है कि भेदभाव व जातिवाद दो ऐसी बिमारियां हैं जिसके लिए सबको एकजुट होकर लड़ने की आवश्यकता है। उन्होंने अपने दोहों और साखियों के माध्यम से समाज को प्रेरित किया। उस समय जातिवाद ने समाज को बुरी तरह से जकड़ा हुआ था, उनके काव्य ने जागरूकता का काम कर समाज को उन बेड़ियों से स्वतंत्र कराने का कार्य किया।

छुआछूत का विरोध–

कबीर ने छुआछूत और जातिवाद जैसी कुरूतियों का तीव्र विरोध किया। उस समय समाज ऊँच–नीच, शुद्ध–अशुद्ध और जातिगत भेदभाव की दीवारों से घिरा हुआ था। लोगों को जन्म के आधार पर ऊँचा या नीचा माना जाता था और यही व्यवस्था सामाजिक असमानता को जन्म देती थी। कबीर ने इस परंपरा को अन्यायपूर्ण बताते हुए इसे खुले शब्दों में अस्वीकार किया।

कबीर का स्पष्ट मानना था कि मनुष्य का मूल्य उसके कर्मों और गुणों से आँका जाना चाहिए न कि उसकी जाति या जन्म से। उन्होंने कहा कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं इसलिए उनमें कोई भेदभाव नहीं हो सकता। कबीर ने समाज में व्याप्त छुआछूत और ऊँच–नीच की भावनाओं को अमानवीय बताया। उनका सदैव यही कहना रहा है कि इस धरा पर हम सभी जीव उस परमात्मा की ही संतान हैं।

"साईं भीतर सब समाना।"

इस विचार के साथ उनका यही कहना है कि ईश्वर हम सभी में समान रूप से विद्यमान है। इसलिए यदि हम किसी जीव का अपमान करते हैं तो वह स्वतः ईश्वर के अपमान की तरह ही है। छुआछूत की प्रथा का विरोध करते हुए उन्होंने यह भी कहा है कि ईश्वर सबके भीतर समान रूप से विद्यमान है। यदि सबके भीतर वही आत्मा है तो किसी को अछूत या अशुद्ध कैसे कहा जा सकता है?

"साँई भीतर सब बसे, जो जानै सो जान।
मूर्ख लोग न जानही, बाहर ढूँढत आन।।"

कबीर के अनुसार जो लोग छुआछूत या ऊँच–नीच का भेद करते हैं वे अज्ञानता के कारण ऐसा करते हैं। सच्चा ज्ञानी जानता है कि परमात्मा सबके भीतर है और इस दृष्टि से सभी समान हैं।उन्होंने अपने समय के ऊँच–नीच के ढकोसले पर करारा व्यंग्य किया है और आगे वह कहते हैं–

"एक बूंद से सब भये, एक ही काया सब।

कौन ब्राह्मण कौन शूद्र है, कह कबीर सो सब।।"

यह दोहा स्पष्ट करता है कि सब मनुष्य एक ही स्त्रोत से उत्पन्न हुए हैं इसलिए किसी को ऊँचा–नीचा मानना व्यर्थ है।कबीर की वाणी में छुआछूत का विरोध केवल सामाजिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक स्तर पर भी है। उन्होंने यह संदेश दिया कि जो व्यक्ति मनुष्य को मनुष्य से अलग करता है वह ईश्वर की सच्ची भक्ति से दूर है।उनकी दृष्टि में भक्ति वही है जो सबको समान दृष्टि से देखे और प्रेम का व्यवहार करे। उन्होंने अपने अनुयायियों को सिखाया कि छुआछूत, जातिवाद और भेदभाव छोड़कर केवल प्रेम, करूणा और भाईचारे के मार्ग पर चलना ही सच्ची साधना है।

इस प्रकार कबीर की वाणी छुआछूत की प्रथा पर तीखा प्रहार है। उनका यह संदेश आज भी उतना ही प्रासंगिक है क्योंकि मानव समाज तभी प्रगति कर सकता है ज बवह समानता और मानवता के आधार पर संगठित हो।

पाखण्ड और बाह्याचार का विरोध–

कबीर की वाणी का सबसे प्रखर पक्ष है पाखंड और बह्यचार का विरोध। उनके समय में धर्म के नाम पर समाज में अनेक प्रकार के आडंबर और दिखावटी आचरण प्रचलित थे। लोग केवल यह मानते थे कि बाहरी पूजा पाठ, स्नान, उपवास, तीर्थयात्रा या मूर्तिपूजा से ईश्वर की प्राप्ति हो

सकती है। कबीर ने इस ढकोसले को सिरे से नकार दिया और कहा कि सच्चा धर्म मन और आत्मा की शुद्धता में है न कि बाहरी कर्मकांड में। कबीर ने किसी को भी नहीं बख्शा, उन्होंने पंडितों और मुल्लाओं दोनों के पाखण्ड को सबके सामने रखा। वे कहते हैं कि बाहरी दिखावे, पूजा–पाठ व जप–तप से ईश्वर नहीं मिलते हैं। कबीर ने स्पष्ट कहा है कि–

"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।

ताते तो चाकी भली, पीस खाए संसार।।"

यहाँ कबीर मूर्तिपूजा पर व्यंग्य करते हैं और सच्चे धर्म को कर्म, प्रेम और सेवा में खोजते हैं। वे मूर्तिपूजा और पत्थर पूजने की परंपरा की तीखी आलोचना करते हैं। उनका कहना है कि यदि पत्थर पूजने से भगवान सकते हैं तो फिर पहाड़ की पूजा क्यों न की जाए? लेकिन ऐसा नहीं है क्योंकि ईश्वर को पाने का मार्ग बाहरी आडंबरों में नहीं, बल्कि आत्मा की सच्ची साधना में है।इसी तरह मुस्लिम समाज के मौलवियों को भी वे चेताते हैं–

"कांकर–पाथर जोड़ि के, मस्ज्दि लई बनाय।

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।"

यहाँ वे कट्टर मुस्लिम धर्माचार्यों की आलोचना करते हैं जो मस्जिद बनाकर ऊँची आवाज में अजान देते हैं। कबीर व्यंग्यपूर्वक कहते हैं कि क्या ईश्वर इतना बहरा हो गया है कि उसे सुनाने के लिए ऊँची आवाज करनी पड़ती है?

कबीर की दृष्टि में बाहरी कर्मकांड और पाखंड से मनुष्य का अहंकार तो बढ़ सकता है, किन्तु उसकी आत्मा शुद्ध नहीं होती। उनके अनुसार सच्ची भक्ति वह है जिसमें मनुष्य अपने भीतर प्रेम, दया और सहिष्णुता का

भाव जगाए। यही साधना उसे ईश्वर के निकट ले जाती है।कबीर ने पाखंड और बाह्याचार को समाज और धर्म की सबसे बड़ी कमजोरी कहा और उस पर अडिग रहते हुए उसका विरोध किया। उनका यह संदेश आज भी प्रासंगिक है क्योंकि आज भी अनेक लोग धर्म के नाम पर दिखावे और आडंबरों में उलझे रहते हैं। कबीर की वाणी से हमें यह स्मरण होता है कि सच्चा धर्म बाहर नहीं है बल्कि वह हमारे भीतर ही है, हमारे आचरण में है।

कबीर का सकारात्मक संदेश–

कबीर की वाणी में सकारात्मकता और जीवन दर्शन का अत्यंत गहरा भाव निहित है। उन्होंने समाज को निराशा, अंधविश्वास और भेदभाव के अंधकार से निकालकर प्रेम, समानता, मानवता और सत्य के प्रकाश की ओर ले जाने का प्रयास किया। उनके विचारों में केवल नहीं था बल्कि उन्होंने निर्माण की दिशा में प्रेरणा भी दी। कबीर का विरोध केवल नकारात्मक नहीं था, बल्कि उसमें सकारात्मक समाधान भी रहा है। उन्होंने प्रेम, भाईचारे और समानता को धर्म का वास्तविक स्वरूप बताया।

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।

ढाई आखर प्रेम की, पढ़े सो पंडित होय।।"

कबीर की वाणी समाज में व्याप्त जातिवाद, छुआछूत और पाखण्ड के विरूद्ध एक क्रांति थी। उन्होंने समानता, करूणा और मानवता को धर्म का वास्तविक स्वरूप माना। वर्तमान युग में भी कबीर के विचार, उनकी वाणी उतनी ही प्रासंगिक दीख पड़ती है जितनी उस युग में थी।

कबीर कहते हैं कि वास्तविक धर्म वही होता है जो मनुष्यता के काम आए, जिससे मनुष्यता का कल्याण हो। कबीर ने उस समय समाज में फैले धार्मिक उन्माद और पाखंडों के खिलाफ एक कठोर आवाज उठाई। कबीर

का कहना था कि समाज में वास्तविक धर्म की स्थापना के लिए आवश्यक है कि समाज में समानता व भाईचारे की भावना को बल मिलें। वह कहते हैं कि बाहरी कर्मकाण्ड व दिखावे को परे करके मानवता की सेवा ही वास्तविक धर्म का कर्त्तव्य है।

कबीर कहते हैं कि धर्म कोई मोक्ष का साधन नहीं है बल्कि यह समाज में व्यवस्था व शांति प्रिय न्याय के लिए होना चाहिए। कबीर का दृष्टिकोण स्पष्ट है कि समाज में जिस धर्म की बात होती है उसमें मजबूत सुधार की आवश्यकता है। कबीर ने जीवन को एक ऐसी साधना बताया जिसमें प्रेम, करूणा, सत्य और आचरण की शुद्धता हो। उन्होंने कहा कि मनुष्य का लक्ष्य केवल ईश्वर की प्राप्ति नहीं होनी चाहिए बल्कि अपने भीतर की अच्छाई और मानवता को जाग्रत करना होना चाहिए।

"साईं इतना दीजिए, जामें कुटुंब समाय।

मैं भी भूखा न रहूं, साधू न भूखा जाय।।"

इस दोहे में कबीर संतुलित जीवन का आदर्श प्रस्तुत करते हैं। वे लोभ या अभाव दोनों से दूर रहने की प्रेरणा देते हैं। उनका यह दृष्टिकोण जीवन में संतुलन और संतोष की सकारात्मक भावना जगाता है।उनकी वाणी लोगों को निरंतर आत्ममंथन और सुधार के लिए प्रेरित करती है। वे कहते हैं–

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं।

सब अंधियारा मिट गया, दीपक देखा माहीं।।"

इस दोहे में कबीर आत्म–विलय और ईश्वर में एकत्व की स्थिति को व्यक्त करते हैं। जब 'अहं' मिट जाता है, तभी सच्चे प्रकाश की अनुभूति होती है, यही उनकी आध्यात्मिक सकारात्मकता है।

समानता, मानवता और सहिष्णुता का संदेश

कबीर की वाणी में समानता, मानवता और सहिष्णुता का स्पष्ट संदेश देखने को मिलता है। उनके समय में भारतीय समाज जातिवाद, धर्मांधता, छुआछूत और पाखंड की जंजीरों में जकड़ा हुआ था। इन परिस्थितियों में कबीरदास ने अपने सशक्त शब्दों से समाज की अन्यायपूर्ण परंपराओं को चुनौती दी और एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ मनुष्य समान हों, एक–दूसरे के प्रति प्रेम और सम्मान का भाव रखें। वह भक्ति आंदोलन के महान संत ही नहीं बल्कि सामाजिक सुधारक और जागरूक चिंतक भी रहे हैं। उनकी वाणी में समानतावादी दृष्टि, मानवतावादी विचार और धार्मिक सहिष्णुता का सशक्त स्वर मिलता है। कबीर ने सभी प्रकार के आडम्बरों और दिखावों से ऊपर उठकर संपूर्ण समाज को एक मानवीय दृष्टि देखने की प्रेरणा दी।

समानता का संदेश–

कबीर भारतीय भक्ति आंदोलन के ऐसे संत कवि थे जिन्होंने अपने काव्य के माध्यम से मानव समानता का अद्‌भुत संदेश दिया। उनके समय में समाज जाति, धर्म, ऊँच–नीच और अमीरी–गरीबी के विभाजनों में बँटा हुआ था। लेकिन कबीर ने इन कृत्रिम भेदों को नकारते हुए यह प्रतिपादित किया कि सभी मनुष्य समान हैं क्योंकि सबमें एक ही परमात्मा का अंश विद्यमान है। कबीर का कहना था कि ईश्वर ने कभी किसी को ऊँचा या नीचा नहीं बनाया। यह भेद तो मनुष्य ने स्वयं अपने स्वार्थ और अहंकार से उत्पन्न किया है। उनके अनुसार जो सबको एक समान दृष्टि से देखता है, वही सच्चा ज्ञानी और भक्त है।

"जाति न पूछो साधू की" दोहे में वह बहुत सहजता के साथ कहते हैं कि हमें किसी भी मनुष्य की जाति न देखकर उसके कर्म पर ध्यान देना चाहिए, उसके ज्ञान की क्षमता को देखना चाहिए। जैसे तलवार की कीमत उसकी धार से होती है म्यान से नहीं, उसी प्रकार मनुष्य की श्रेष्ठता उसके आचरण से होती है न कि जन्म से।

कबीर के लिए समानता का आधार आध्यात्मिक था। वे मानते थे कि ईश्वर हम सब के भीतर विद्यमान है, इसलिए सभी प्राणी उन्हीं का रूप है। उनका एक दोहा इस प्रकार है–

"अवधू देख पराई चाल, न हँस, न तज, न निंद।
सब घट मेरा साईं बसै, मुर्ख समझै भिंद।।"

उपर्युक्त दोहे के माध्यम से वह बताते हैं कि जो व्यक्ति दूसरों में भेदभाव करता है, वह अज्ञानी है, क्योंकि ईश्वर हर हृदय में समान रूप से बसता है।कबीरदास कहते हैं कि जो मनुष्य अपने भीतर ईश्वर को देखता है, वह दूसरों में भी उसी ईश्वर का अंश पहचानता है। इसलिए वह किसी से भेदभाव नहीं करता। उनके लिए सभी मनुष्य एक समान हैं– चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, अमीर हो या गरीब।कबीर यह भी कहते हैं कि चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, ब्राह्मण हो या शूद्र सभी के भीतर उनका ही अंश है। उन्होंने दोनों संप्रदायों की कुरूतियों पर समान रूप से प्रहार किया है। वह कहते हैं–

"हिंदू कहे मोहे राम पियारा, तुरक कहे रहमाना।
आपस में दोऊ लरि मरि गए, मरम न कोउ जाना।।"

यहाँ वह कहते हैं कि दोनों ही अपने अपने ईश्वर को श्रेष्ठ मानते हैं, परंतु कोई यह नहीं समझ पाता कि दोनों एक ही सत्य के दो नाम हैं।

कबीर का समानता का संदेश केवल धर्म और जाति तक सीमित नहीं था वह सामाजिक जीवन में भी प्रतिध्वनित होता है। उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति श्रम करता है, सत्य बोलता है और दूसरों की भलाई में लगा रहता है वही सच्चा श्रेष्ठ है। उन्होंने श्रम, ईमानदारी और प्रेम को समाज का वास्तविक मूल्य बताया।

उनकी वाणी में यह विश्वास स्पष्ट झलकता है कि जब तक समाज में समानता और करूणा की भावना नहीं आती, तब तक सच्चा धर्म स्थापित नहीं हो सकता। उन्होंने भेदभाव, ऊँच–नीच अमीरी–गरीबी और पाखंड से मुक्त होकर एक ऐसे समाज की कल्पना की जहाँ सबको समान अधिकार और सम्मान मिले।संत कबीर ने सगुण साकार ब्रह्म एवं निर्गुण निराकार ब्रह्म के मध्य सेतु का कार्य किया जिससे संसार रूपी भवसागर को जीवात्मा पार कर परमात्मा को प्राप्त कर सके। इस कारण से उनको केवल निर्गुण ब्रह्म का साधक मानना सही नहीं है।

मानवता का संदेश–

कबीर ने अपनी वाणी से मानवता का सर्वोच्च संदेश दिया। उनके काव्य का मूल उद्देश्य था– मनुष्य को मनुष्य से जोड़ना, समाज में प्रेम, करूणा और समानता की भावना जागृत करना। जब समाज जातिवाद, धार्मिक भेदभाव, पाखंड और अंधविश्वास से बँटा हुआ था, तब कबीरदास ने अपनी निर्भीक आवाज़ में कहा कि सच्चा धर्म मानवता है– जो मनुष्य से प्रेम करता है, वही ईश्वर से प्रेम करता है।

कबीर का कहना था कि यदि किसी की पूजा और भक्ति से मनुष्य के भीतर करूणा, प्रेम और दया का भाव नहीं आता, तो वह अधूरी है। उनके लिए धर्म का सार मानव कल्याण में निहित था।

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ" इस दोहे में वह कहते हैं कि सच्चा ज्ञान पुस्तकों में नहीं, बल्कि प्रेम में है। जो प्रेम करना जानते हैं वही सच्चे ज्ञान को प्राप्त करते हैं, क्योंकि प्रेम ही मानवता का वास्तविक आधार है।कबीर ने जाति–पाँति, ऊँच–नीच और भेदभाव की जंजीरों को तोड़ने का प्रयास किया। उनके अनुसार सभी जीव ईश्वर की संतान हैं।

"एक ही माटी के सब बने, कुम्हार ज्यों गारे देह।
कौन बामन, कौन शूद्र, कह कबीर यह खेल अनेह।।"

यह दोहा मानव समानता और एकता का सजीव उदाहरण है। कबीर कहते हैं कि सब मनुष्य एक ही मिट्टी के बने हुए हैं, इसलिए सब में वही ईश्वर विद्यमान है। किसी को भी ऊँचा या नीचा कहना अज्ञानता की निशानी है।कबीर के अनुसार जिसमें मानवता के भाव सम्मिलित हो वही वास्तविक भक्ति है। वह कहते भी हैं–

"जग में रहो करि बैन करूणा, बिन बैन सब सूना।
कबिरा यह तन जाएगा, रह जाएगा नाम सुना।।"

यहाँ वह कहते हैं कि जीवन का उद्देश्य दूसरों के प्रति करूणा, प्रेम और सहानुभूति रखना है। यही मानवीय गुण मनुष्यता को महान और सुन्दर बनाते हैं।कबीर ने ईश्वर को कभी भी मंदिर, मस्जिद या ग्रंथों में सीमित नहीं किया। उनका कहना था कि वह तो सभी जीवों के हृदय में वास करते हैं, इसलिए किसी भी जीव के साथ छल करना या अन्याय करना ईश्वर का अपमान करने जैसा है। वह बताते हैं–

"साईं भीतर सब बसे, जो जानै सो जान।
मूर्ख लोग न जानही, बाहर ढूँढत आन।।"

अर्थात ईश्वर सबके भीतर है, किंतु अज्ञानी मनुष्य उसे बाहर खोजता रहता है।कबीर का मनुष्यता के प्रति संदेश अत्यंत व्यापक और सार्वभौमिक है। वह कहते हैं कि जब तक मनुष्य अपने भीतर प्रेम, करूणा और सहिष्णुता का भाव जाग्रत नहीं करता तब त कवह ईश्वर को नहीं पा सकता है और न ही शांति को प्राप्त कर पाता है।

कबीर के लिए सच्चा धर्म न तो मंदिर–मस्जिद में है न ही बाहरी आडंबरों में। उनका धर्म केवल प्रेम, करूणा और सेवा पर आधारित है। कबीर कहते हैं कि समाज के लिए ग्रन्थों के ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण है प्रेम का ज्ञान जो कि मानवता का मूल है।

आज के समय में संसार में अजीब प्रकार की प्रवृतियाँ जन्म ले रहीं हैं जैसे– हिंसा, असहिष्णुता और भेदभाव। इसलिए कबीर की यह वाणी और भी अधिक प्रासंगिक हो उठती है। उनका यह संदेश हमें यह सिखाता है कि धर्म का वास्तविक अर्थ मानवता की सेवा और सबके प्रति समान प्रेम है।कबीर का जीवन और काव्य दोनों ही इस बात का प्रतीक है कि–

"मानवता ही परम धर्म है, और प्रेम ही परम सत्य।"

सहिष्णुता का संदेश–

कबीर की वाणी भारतीय समाज के लिए केवल आध्यात्मिक शिक्षा नहीं, बल्कि सहिष्णुता और सद्भाव का जीवंत संदेश भी है। उन्होंने ऐसे समय में जन्म लिया जब समाज धार्मिक कट्टरता, ऊँच–नीच और संप्रदायिक भेदभाव से बंटा हुआ था। हिन्दू और मुसलमान अपने–अपने धर्म को सर्वोच्च मानते थे और एक–दूसरे के प्रति असहिष्णु थे। ऐसे वातावरण में कबीरदास ने प्रेम, एकता और सहिष्णुता की मशाल जलाकर समाज को नई दिशा दी।

कबीर का मानना था कि ईश्वर एक है, चाहे कोई उसे 'राम' कहे या 'रहमान'। वे कहते हैं कि नामों के भेद से सत्य नहीं बदलता। उनके अनुसार सभी धर्म, संप्रदाय और आस्थाएं एक ही परम सत्य की ओर ले जाती हैं। वह कहते हैं–

"हिंदू कह मोहे राम पियारा, तुरक कहे रहमाना।

आपस में दोऊ लरि मुए, मरम न कोउ जाना।।"

इसमें वह कहते हैं कि हिंदू 'राम' की बात करते हैं और मुसलमान रहमान की बात करते हैं। किंतु दोनों को इस बात को समझना चाहिए कि ये एक ही परमसत्ता के दो अलग–अलग नाम हैं। वे धर्म के नाम पर आपस में झगड़ते हैं, जबकि सच्चा ज्ञानी यह जानता है कि सत्य एक है, उसके मार्ग अनेक हो सकते हैं। कबीर ने हिंदू–मुसलमान दोनों समुदायों की संकीर्णताओं और कट्टरताओं का विरोध किया। वे कहते हैं कि ईश्वर न हिन्दुओं का है और न ही मुसलमानों का, बल्कि वह तो हम सभी का है। वह कहते हैं कि सच्चा धर्म वह है जो सबको जोड़ता है, न कि बाँटता है।

"अलह राम का गुण गाइये, सबनां का सिरजानहार।"

कबीर की वाणी धार्मिक सहिष्णुता और सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव जगाती है।

"अल्लाह राम का नाम एक है, पढ़े नाम जो कोई।

कहै कबीर, जो राम रहा तो, वही रहमाना होई।।"

उपर्युक्त दोहा स्पष्ट करता है कि कबीर की दृष्टि में ईश्वर

समाजिक–सांस्कृतिक महत्व–

कबीर का दृष्टिकोण भारतीय समाज के लिए क्रांतिकारी था। उनके विचारों ने समाज में समरसता, भाईचारा और सहअस्तित्व की भावना को

प्रोत्साहित किया। आज के बहु–धर्मी और विविधतापूर्ण समाज में भी यह दृष्टि उतनी ही प्रासंगिक है।

कबीर की वाणी का सार यही है कि सच्चा धर्म केवल समानता, मानवता और सहिष्णुता है। वे प्रेम को धर्म का आधार मानते हैं और सभी जाति, वर्ग और धर्मों को एक ही ईश्वर की संतान बताते हैं। उनका संदेश आज भी समाज को जोड़ने और विभाजन की प्रवृत्तियों को मिटाने के लिए मार्गदर्शक है।

कबीर ने सामान्य जन की भाषा में अपने विचार रखें जिससे संसार को ज्ञान व भक्ति मार्ग के उपदेशों की प्राप्ति हुई। कबीर ने अपने कर्म का पालन करते हुए परमधर्म का उपदेश दिया। इनकी वाणी में इतनी सहजता व सरलता रही है कि ये आज भी शोध का विषय बने हुए हैं।कबीर ने सूत कातते चर्खे व तूनी को देखकर कहा भी है–

"अष्ट कमल का चर्खा बना है पांच तत्व की तूनी

नौ दस मास बुनने में लागे, तब बन आई घर चदरिया

झीनी रे झीनी चदरिया राम रंग भीनी रे चदरिया।।"

कबीर ने निर्गुण ब्रह्म के विषय में कहा है कि **'निर्गुण पंथ निराला साधो'**। वहीं कबीर सगुण साकार ब्रह्म की बात करते हुए कहते हैं कि ध्रुव, प्रहलाद्, सुदामा व सुकदेव की बात करते हैं। और क्योंकि ये सभी सगुण ब्रह्म से संबंधित है इसलिए यह कहना उचित नहीं होगा कि कबीर केवल निर्गुण ब्रह्म से ही संबंध रखते हैं।कबीर ने हमेशा रूढ़िवादी, सड़ी–गली सोच का विरोध किया एवं संसार के उद्धार की।

धार्मिक सहिष्णुता और समन्वयवाद

15वीं शताब्दी का भारत धार्मिक उथल–पुथल से भरा हुआ था। एक ओर हिन्दू समाज में मूर्तिपूजा, जातिवाद और कर्मकाण्ड का बोलबाला था तो दूसरी ओर मुस्लिम समाज में कट्टरता और बाहरी आडंबर। ऐसे समय में संत कबीरदास ने धार्मिक सहिष्णुता और समन्वयवाद का स्वर बुलंद किया। उनकी वाणी ने हिन्दू–मुसलमान दोनों को जोड़ने का प्रयास किया।

उस समय देखा जाए तो धार्मिक पाखंड, बाहरी दिखावे का बोलबाला था। समाज इन्हीं सब में उलझा रहता था, दिखावे और बाहरी आडंबर अपने चरम पर थे। लोग कर्तव्य का पालन करने के स्थान पर दिखावे व पाखंडों पर भरोसा कर रहे थे। कबीर ने इन सभी इन सभी पाखंडों व आडंबरों का विरोध करते हुए सच्ची आस्था व आंतरिक भावना पर बल दिया। उनका यही कहना था कि ये सभी तत्व समाज की एकता के लिए हानिकारक हैं।

वे स्पष्ट कहते हैं कि वास्तविक धर्म वही है जो समाज को जोड़ने का कार्य करता है जिसमें इंसानियत सेवा निहित है। कबीर ने धार्मिक गुरूओं को भी नहीं बख्शा वो कहते हैं कि यदि पत्थर पूजने से ईश्वर मिल जाते हैं तो मैं पहाड़ पूजने के लिए तैयार हूँ। उनके लिए दिखावे से अधिक आंतरिक भक्ति महत्वपूर्ण है।

कबीर अपने काव्य के माध्यम से यह स्पष्ट करते हैं कि धार्मिक कर्मकांड, मूर्तिपूजा या अन्य प्रकार के आडंबरों से अधिक महत्वपूर्ण सच्ची आस्था व भक्ति है। मनुष्य को अपने मन की पवित्रता और प्रेम के द्वारा परमात्मा को प्राप्त करने के जतन करने चाहिए।

धार्मिक सहिष्णुता का भाव–

कबीर की वाणी में धार्मिक सहिष्णुता का भाव अत्यंत प्रबल रूप से दिखाई देता है। उनका जन्म एक ऐसे समय पर हुआ जब समाज हिंदू–मुस्लिम विभाजन, जातिगत भेदभाव और संकीर्ण धार्मिक मान्यताओं में बँटा हुआ था। दोनों समुदाय अपने–अपने धर्म को सर्वोच्च मानते थे और दूसरों को नीचा दिखाने की होड़ में लगे थे। ऐसे माहौल में कबीर ने एक ऐसी वाणी दी, जो मानवता, प्रेम और एकता का संदेश लेकर आई।

कबीर ने यह स्पष्ट कहा कि ईश्वर एक है, केवल उसे पाने के मार्ग भिन्न हैं। हिंदू उसे 'राम' कहते हैं और मुसलमान उसे 'खुदा' या 'अल्लाह' कहते हैं लेकिन उसका सार एक ही है। कबीर धार्मिक आडंबरों की आलोचना करते हुए लिखते हैं कि ईश्वर किसी मस्जिद या मंदिर की दीवारों में सीमित नहीं है वह हर जीव और हृदय में विद्यमान है। वह मनुष्य की मूर्खता पर प्रकाश डालते हैं जिसमें लोग ईश्वर के नाम पर झगड़ते हैं जबकि सच्चा भक्त वह है जो नाम के भेद से परे, उस एक सत्य की खोज करे जो सबमें समान रूप से व्याप्त है।

कबीर के अनुसार धर्म का मूल उद्देश्य मानवता की रक्षा, प्रेम का प्रसार और सत्य का आचरण है। उन्होंने न हिंदू धर्म का पक्ष लिया, न इस्लाम का, बल्कि उस 'मानव धर्म' का समर्थन किया जो सबको एक समान दृष्टि से देखता है। इसी परिपेक्ष में वह कहते हैं–

"मोको कहाँ ढूंढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं मंदिर, ना मैं मस्जिद, ना काबे कैलास में।।"

इस दोहे में कबीर बताते हैं कि ईश्वर को बाहर नहीं बल्कि अपने भीतर खोजो। जब इंसान का मन निर्मल, निष्कंलक और प्रेममय होता है, तभी उसे सच्चे परमात्मा का अनुभव होता है।

कबीरदास की दृष्टि में धार्मिक सहिष्णुता का अर्थ केवल दूसरों के धर्म को सहना नहीं, बल्कि हर धर्म में सत्य के तत्व को स्वीकार करना है। वे यह मानते थे कि हर मार्ग किसी न किसी रूप में उसी परम सत्य की ओर ले जाता है।उन्होंने समाज को यह शिक्षा दी कि–**"धर्म का सार प्रेम है, और प्रेम में न कोई भेद है, न विरोध।**

कबीर ने स्पष्ट कहा है कि ईश्वर किसी एक धर्म या संप्रदाय का नहीं है बल्कि वह सबका है। वे राम व रहीम, केशव व करीम में भेद नहीं करते हैं।

"कबीरा खड़ा बजार में, लिए लुकाठी हाथ।

जे घर फूँके आपना, चले हमारे साथ।।"

यहाँ उनका तात्पर्य है कि जो मनुष्य अपने भीतर के अंहकार और संकीर्णता को जलाकर आगे बढ़ता है वही मनुष्य ईश्वर को पा लेता है।इस प्रकार कबीर की वाणी में जो उदारता, करूणा और समन्वय का भाव है वही धार्मिक सहिष्णुता का सच्चा स्वरूप है। उन्होंने अपने अनुभव और सहज भाषा के माध्यम से यह सिखाया कि जब तक मनुष्य एक–दूसरे धर्म, विश्वास और भावनाओं का आदर नहीं करेगा तब तक सच्चे ईश्वर की प्राप्ति संभव नहीं है।

समन्वयवाद की भावना–

कबीरदास की वाणी में समन्वयवाद की भावना अत्यंत गहराई से विद्यमान है। उन्होंने ऐसे युग में जन्म लिया जब भारत में धार्मिक,

सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर गहरा विभाजन था। हिंदू और मुस्लिम समुदायों के बीच वैमनस्य बढ़ चुका था; पूजा–पाठ, कर्मकांड, जाति–पांति और बाह्याचार ने धर्म के वास्तविक स्वरूप को ढँक दिया था। ऐसे समय में कबीर एक ऐसे संत के रूप में उभरे जिन्होंने दोनों धर्मों के श्रेष्ठ तत्वों को स्वीकार कर सत्य, प्रेम और मानवता पर आधारित समन्वय की नई दृष्टि प्रस्तुत की।

कबीर दोनों समुदायों की संकीर्णता पर व्यंग्य करते हुए कहते हैं कि राम और रहमान में कोई अंतर नहीं है। ईश्वर एक ही है केवल नाम और पूजा पद्धतियाँ भिन्न हैं। कबीर ने हिंदू भक्ति और सूफी मत दोनों की सार्थकताओं को अपनाया। भक्ति आंदोलन की निर्गुण शाखा में रहते हुए उन्होंने सूफियों के ईश्वर प्रेम, आत्मा की एकता और अद्वैत भाव को अपने चिंतन में समाहित किया। वह कहते हैं– "अलह राम का गोत एक है, कोई कहे राम, कोई कहे रहमाना।" यहाँ स्पष्ट होता है कि कबीर का ईश्वर सर्वव्यापक है–न हिंदू, न मुसलमान। उन्होंने सभी धर्मों की सीमाएँ लाँघकर एक सार्वभौमिक सत्य की स्थापना की।

कबीर का समन्वयवाद केवल धार्मिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि दार्शनिक और सामाजिक स्तर पर भी दिखाई देता है। उन्होंने वेदों और कुरान दोनों की गूढ़ता को समझा, परंतु किसी का अंधानुकरण नहीं किया। कबीर ज्ञान और धर्मग्रंथों की जटिलता से ऊपर उठकर प्रेम और अनुभव को सच्चा धर्म मानते हैं। यहां उनका समन्वय भाव ज्ञान और भक्ति, श्रद्धा और विवेक के बीच संतुलन स्थापित करता है।

कबीर का यह समन्वय केवल विचारों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उनके जीवन–आचरण में भी झलकता है। उनका पालन–पोषण मुस्लिम परिवार में हुआ लेकिन वे संत रामानन्द के शिष्य बने, जिन्होंने उनको

राम–नाम की दीक्षा दी। उन्होंने अपने जीवन से ही हिंदू–मुस्लिम एकता का प्रतीक स्थापित किया। कबीर के समन्वयवाद का सार यह है कि– "सभी धर्मों का उद्देश्य मनुष्य को सत्य, प्रेम और ईश्वर के समीप लाना है।" बाहरी रूप भिन्न हो सकते हैं, पर अंतर्निहित तत्व एक ही है– अद्वैत सत्य।

कबीर की दृष्टि में न कोई उच्च है न निम्न; न कोई हिंदू है, न मुसलमान; सब एक ही परमात्मा की संतान हैं। उन्होंने कहा–

"हम सब ही माँ के दूध पले हैं, सबका एक ही है खून।"

अर्थात् मनुष्य एक ही स्त्रोत से उत्पन्न हैं इसलिए भेद करना अनुचित है।कबीर का समन्वयवाद केवल धार्मिक सहिष्णुता नहीं, बल्कि **एकता, प्रेम और आत्मा की सार्वभौमिकता** का दर्शन है। उन्होंने मनुष्य को यह समझाया कि ईश्वर की प्राप्ति मंदिर, मस्जिद या तीर्थ से नहीं बल्कि अपने भीतर के सत्य और प्रेम से होती है।

कबीर ने हिन्दू व इस्लाम दोनों की सकारात्मक बातों को स्वीकार किया और नाकारात्मक पक्षों की आलोचना की।हिन्दू धर्म में भक्ति, प्रेम और आंतरिक साधना को उन्होंने अपनाया।इस प्रकार कबीर की वाणी हिन्दू और इस्लामी तत्वों के समन्वय का सुन्दर उदाहरण है। कबीर का समन्वयवाद भारतीय संस्कृति की वह मधुर ध्वनि है जिसमें हिंदू और इस्लामी परंपराएं, ज्ञान और भक्ति, श्रद्धा और विवेक, ईश्वर और मानव सभी का एक सुन्दर संगम दिखाई देता है।

पाखण्ड और संकीर्णता का विरोध–

कबीरदास का जीवन और काव्य दोनों ही पाखंड और संकीर्णता के विरोध से ओत–प्रोत हैं। उन्होंने अपने समय के समाज को बहुत नज़दीक से देखा, जहाँ धर्म के नाम पर आडंबर, जाति के नाम पर ऊँच–नीच और

पूजा–पाठ के नाम पर ढोंग फैला हुआ था। कबीर ने इन सबकी तीखी आलोचना की और मनुष्य को सच्चे आध्यात्मिक मार्ग पर चलने का संदेश दिया।

कबीर की वाणी समाज में व्याप्त पाखंड, संकीर्णता और बाह्याडंबरों के विरोध की प्रखर आवाज है। उन्होंने ऐसे समय में जन्म लिया जब धर्म के नाम पर आडंबर, अंधविश्वास और दिखावा चरम पर था। लोग मंदिर–मस्जिद, पूजा–पाठ, तीर्थयात्रा और बाहरी कर्मकांडों को ही धर्म समझने लगे थे। कबीर ने इन सबका तीखा विरोध किया और कहा कि सच्चा धर्म हृदय की पवित्रता और सत्य के आचरण में है, न कि बाहरी दिखावे में। जैसे उन्होंने कहा भी है–

"माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।

कर का मनका छोड़ि दे, मन का मनका फेर।।"

इसमें कबीर ने स्पष्ट कहा है कि हाथों से माला फेरने से कुछ नहीं होने वाला, हमें पहले अपने मन का फेर बदलना बहुत जरूरी है। सच्ची साधना मन की शुद्धि है न कि बाहरी क्रिया–कर्म।

कबीर ने पाखंडियों को झकझोरते हुए कहा कि ईश्वर जिसे तुम मंदिर–मस्जिद में तलाश्ते हो वह तो स्वयं तुम्हारे भीतर ही है। कबीर कहते हैं कि यदि पत्थर पूजने से भगवान मिल जाए तो पहाड़ की पूजा करनी चाहिए परंतु वह तो निष्प्राण है। उससे तो चक्की बेहतर है जो पीसकर संसार का पेट भरती है। "पाहन पूजे हरि मिले" यह दोहा धार्मिक पाखंड पर गहरा व्यंग्य है।

कबीरदास का कहना था कि लोग धर्म के बाहरी रूप में उलझे हुए हैं और ईश्वर के वास्तविक स्वरूप प्रेम, सत्य और करूणा को भूल गए हैं। उन्होंने मनुष्य को स्वयं के भीतर झाँकने का संदेश दिया।

"मस्जिद ऊपर मौरख चढ़े, क्या बहिरा हुआ खुदाय।

जिन को ढूंढे बाग–बगैचा, सो घर ही में है साय।।"

उपर्युक्त दोहे में कबीर ने मुसलमानों की उस प्रवृति पर चोट किया है जिसमें ईश्वर की भक्ति के लिए ऊँची आवाजों में प्रार्थना की जाती है। वे कहते हैं कि ईश्वर बहरा नहीं है इसलिए उसे पुकारने के लिए ऊँची आवाज की आवश्यकता नहीं। ईश्वर तो सदैव हमारे भीतर ही निवास करता है।

कबीरदास के अनुसार धर्म का सार किसी एक पंथ या संप्रदाय में नहीं बल्कि मानवता में है। उन्होंने संकीर्णता, जातिगत भेदभाव और धर्म के झूठे आडंबरों का विरोध करते हुए यह सिखाया कि जो मनुष्य सच्चा, विनम्र और करूणामय है वही ईश्वर के निकट है। उनकी दृष्टि में धर्म का अर्थ था– सत्य बोलना, दूसरों का भला करना, लोभ और घृणा से मुक्त रहना।

कबीर धर्म के नाम पर किए जाने वाले आडंबरों की खिल्ली उड़ाते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर किसी इमारत या मूर्ति में नहीं बल्कि हर जीव के भीतर है। वह यह भी कहते हैं कि संकीर्ण दृष्टिकोण मनुष्य को सत्य से दूर करता है। उन्होंने कहा कि यदि कोई व्यक्ति केवल अपने धर्म, जाति या संप्रदाय को श्रेष्ठ मानता है तो फिर वह व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से अंधा है।उनकी वाणी का सार यह है कि धर्म का वास्तविक स्वरूप आचरण की सच्चाई और अंतःकरण की निर्मलता में निहित है। बाहरी पूजा, जप, तप से कुछ प्राप्त नहीं होता है।

उनका मानना था कि बाहरी आडंबर और पाखंड से ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि पत्थर पूजने से भगवान मिलते तो सबसे पहले पहाड़ की पूजा करनी चाहिए। वे दिखावटी साधना, माला फेरने, स्नान करने, मूर्तिपूजा या केवल ग्रंथ पढ़ने से ईश्वर प्राप्ति को अस्वीकार करते हैं। उनके अनुसार जब तक मन शुद्ध नहीं होता तब तक कोई भी धार्मिक क्रिया निरर्थक है।

कबीर ने धार्मिक संकीर्णता का भी विरोध किया। वे केवल हिन्दू या केवल मुसलमानों के कवि नहीं थे बल्कि दोनों को समान रूप से संबोधित करते थे। उन्होंने पंडितों और मुल्लाओं दोनों को आडंबर और कट्टरता के लिए आड़े हाथों लिया। उनके लिए राम और रहीम, हरि और अल्लाह में कोई भेद नहीं था। कबीर का कहना था कि ईश्वर किसी एक धर्म या संप्रदाय की संपत्ति नहीं है, वह तो सबका है और सबके भीतर वास करता है।

उनकी दृष्टि में सच्चा धर्म वह है जो मनुष्य को आडंबरों से मुक्त कर प्रेम, करूणा और सहिष्णुता की ओर ले जाए। कबीर ने यह स्पष्ट किया कि संकीर्णता मनुष्य को बाँटती है और पाखंड उसे सच्चे आध्यात्मिक जीवन से दूर ले जाता है। इसलिए उन्होंने कहा कि जो व्यक्ति अपने भीतर ईमानदारी, सत्य और भक्ति का भाव रखता है, वही सच्चे अर्थों में ईश्वर के निकट पहुँच सकता है। कबीर ने दोनों धर्मों के पाखण्ड़ों और कट्टरताओं का विरोध किया।

- हिन्दू समाज के लिए–**"पाहन पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहाड़।"**
- मुस्लिम समाज के लिए–**"कांकर पाथर जोड़ि के मस्जिद लई बनाय। ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।"**

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि कबीर का लक्ष्य किसी धर्म को नीचा दिखाना नहीं था बल्कि सत्य, प्रेम और ईश्वर की आंतरिक अनुभूति की ओर ले जाना था। कबीर का काव्य समाज में प्रचलित पाखंड और संकीर्णता पर प्रहार है। वे एक संत कवि हैं जिन्होंने अपने शब्दों से समाज को जागरूक किया और जीवन के सार्थक मूल्यों की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी।

कबीर का सार्वभौमिक संदेश–

कबीर भारतीय समाज और संस्कृति के ऐसे महान संत थे जिनकी वाणी समय, समाज और संप्रदाय की सीमाओं से परे जाकर पूरे विश्व के लिए संदेश देती है। उन्होंने अपने समय में व्याप्त अंधविश्वास, जातिवाद धार्मिक कट्टरता और पाखंड को कठोर शब्दों में अस्वीकार किया और एक ऐसी राह दिखाई जो मानवता और प्रेम पर आधारित थी। कबीर का कहना था कि मनुष्य की वास्तविक पहचान उसकी जाति या धर्म से नहीं करनी चाहिए बल्कि उसके आचरण व गुणों को देखना चाहिए। उनके अनुसार सभी मनुष्य ईश्वर की संतान हैं, इसलिए उनमें भेदभाव नहीं होना चाहिए।

कबीर ने यह स्पष्ट किया कि सच्चा धर्म केवल प्रेम है। उन्होंने कहा कि यदि कोई व्यक्ति ग्रन्थों का अध्ययन करता रहे लेकिन उसके भीतर करूणा और प्रेम का भाव नहीं है तो वह अधूरा है। उनके लिए सबसे बड़ा ज्ञान "ढ़ाई आखर प्रेम का" था। प्रेम ही वह शक्ति है जो मनुष्य को मनुष्य से जोड़ता है और उसे ईश्वर तक पहुँचाता है।

धार्मिक संकीर्णताओं के संदर्भ में कबीर ने हिन्दू और मुस्लिम दोनों को समान रूप से संबोधित किया। वे राम व रहीम, हरि और अल्लाह में कोई अंतर नहीं मानते थे। उनका मानना था कि ईश्वर किसी मंदिर,

मस्जिद या मूर्ति में सीमित नहीं है, बल्कि वह हर जीव के भीतर विद्यमान है। इस दृष्टि से वे धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय के अद्वितीय प्रवक्ता थे।

कबीर ने मूर्तिपूजा, कर्मकाण्ड और बाह्याचार पर तीखा व्यंग्य किया। उनका कहना था कि यदि पत्थर पूजने से ईश्वर मिल सकता है तो सबसे पहले पहाड़ की पूजा करनी चाहिए । उनके लिए ईश्वर की सच्ची खोज बाहरी साधनों में नहीं, बल्कि अंतर्मन की शुद्धता और निष्ठा में थी। यही कारण है कि वे समाज को आडंबरों से मुक्त करने और आंतरिक साधना की ओर ले जाने वाले संत कहलाए। कबीर का धर्म न हिन्दू था न मुसलमान, बल्कि वे मानवधर्म के प्रवक्ता थे। उनका संदेश स्पष्ट था कि–

- सभी धर्मों की मूल आत्मा प्रेम व करूणा है।
- ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग बाहरी आडंबर नहीं, बल्कि आंतरिक साधना है।
- समाज में सहिष्णुता और समन्वय ही शांति और एकता का आधार है।

उनकी वाणी में श्रम और ईमानदारी के महत्व का भी विशेष स्थान है। उन्होंने आलस्य और परजीवी जीवन की निंदा की और हर व्यक्ति को परिश्रम और कर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उनके अनुसार बिना कर्मठता के न तो जीवन सफल हो सकता है और न ही साधना सार्थक।

आज के युग में जब समाज जातीय भेदभाव, धार्मिक कट्टरता और असमानता जैसी समस्याओं से जूझ रहा है, कबीर का संदेश और भी प्रासंगिक हो जाता है। उनकी वाणी हमें यह सिखाती है कि मनुष्य को धर्म, जाति और संप्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठकर प्रेम, समानता और

सहिष्णुता को अपनाना चाहिए। यही सच्चा धर्म है और यही जीवन का उद्देश्य।

कबीर की वाणी भारतीय संस्कृति में धार्मिक सहिष्णुता और समन्वयवाद की सबसे प्रखर आवाज है। उन्होंने बताया कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य से जोड़ना है बाँटना नहीं। इसलिए कबीर आज भी सांप्रदायिक सद्भाव, भाईचारे और विश्व मानवता के प्रतीक माने जाते हैं।कबीर ने सार्वभौमिक संदेश यही दिया है कि सच्चा ईश्वर बाहरी आडंबरों में, बल्कि हर हृदय में बसता है। उसे पाने के लिए मनुष्य को अपने भीतर प्रेम, करूणा और सहिष्णुता का भाव जगाना होगा। कबीर की वाणी केवल उनके समय के लिए ही नहीं, बल्कि आज और आने वाले समय के लिए भी उतनी ही सार्थक है। इसलिए उन्हें विश्व मानवता का कवि और युग प्रवर्तक संत कहा जाता है।

डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी लिखते हैं कि उत्तर भारत में दो प्रकार की जनता निवास करती थी। एक हिन्दू व दूसरी मुस्लिम जनता, हिन्दू अधिक थे व मुस्लिम कम। वर्ण व्यवस्था ने हिन्दू जनता को सुरक्षित रखा। ब्रह्मणों की दशा बड़ी दीन थी। इसका कारण मुसलमान शासक थे। शूद्र जातियों और उपजातियों में भेदभाव विद्यमान था। यह आर्थिक दृष्टि से भी निम्न थे। इनको मंदिरों में प्रवेश करने का भी अधिकार नहीं था। समाज में अनेक अछूत जांतियां थीं, जिनमें शिक्षा व सभ्यता का अभाव था। इस्लाम के भारत में प्रवेश के बाद हिन्दू समाज की स्थिति में परिवर्तन हुआ कि अनेक शूद्र इस्लाम में दीक्षित हुए।

"बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।

पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर।।"

कबीर इस दोहे में सामाजिक और नैतिक जीवन का एक अत्यंत गहरा सत्य सरल रूपक के माध्यम से प्रकट करते हैं। वह "खजूर के पेड़" को एक प्रतीक के रूप में उपयोग करते हैं। खजूर का वृक्ष बाहर से बहुत ऊँचा, सीधा और आकर्षक दिखाई देता है परंतु उसकी उपयोगिता सीमित होती है– न तो वह किसी को छाया देता है और न ही उसके फल सरलता से प्राप्त हो पाते हैं।

कबीर इस वृक्ष को रूपक बनाकर उन मनुष्यों की आलोचना करते हैं जो बाह्य रूप से बड़े, प्रतिष्ठित, धनी, पद–युक्त या अहंकारी होते हैं, किंतु समाज और मनुष्यों के लिए किसी भी प्रकार से हितकारी नहीं होते हैं। ऐसे लोग केवल ऊँचे दिखते हैं पर उनकी ऊँचाई का किसी को लाभ नहीं पहुँचता हैं।

"बड़ा हुआ तो क्या हुआ"– बाह्य विकास की निरर्थकता

कबीर यहां "बड़ा" शब्द का प्रयोग शारीरिक, सामाजिक, आर्थिक और प्रतिष्ठात्मक "बड़प्पन" के लिए करते हैं।

- बड़ा पद
- बड़ा धन
- बड़ा अहंकार
- बड़ी वाणी
- बड़ा आडंबर

कबीर के अनुसार यह सब तब तक निरर्थक है जब तक वह मनुष्यता, सहानुभूति और उपयोगिता से न जुड़ा हो।

दार्शनिक अर्थ

किसी वस्तु या व्यक्ति का महत्व उसकी उपयोगिता और मानव कल्याण में निहित होता है न कि उसकी ऊँचाई, प्रतिष्ठा या बाहरी भव्यता में।

"जैसे पेड़ खजूर"– रूपक का चयन

खजूर का पेड़ बहुत ऊँचा होता है किंतु

- उसके नीचे कोई छाया नहीं मिलती
- उसके फल बहुत ऊँचाई पर लगते हैं
- पंछियों को ठहरने की जगह नहीं मिलती।

कबीर ने इस वृक्ष की तुलना उन मनुष्यों से की है जो अहंकारी और स्वार्थी होते हैं, यह वृक्ष उनका प्रतिरूप है।

रूपक का कौशल

खजूर का वृक्ष मरूस्थल और शुष्क वातावरण देता है जो प्रतीक निर्ममता, शुष्कता, अहं और उपयोगहीनता का प्रतीक है।

"पंछी को छाया नहीं"– सामाजिक जिम्मेदारी का अभाव

पंछी यहां आम मनुष्यों, समाज, जरूरतमंदों और आसपास के लोगों का प्रतीक है।खजूर स्वभाव वाला मनुष्य–

- किसी को सहारा नहीं देता
- किसी की मदद नहीं करता
- किसी के लिए आश्रय नहीं बनता
- दूसरों के सुख–दुख से उसका कोई संबंध नहीं होता

ऐसों का बड़प्पन समाज के लिए निरर्थक है।

"फल लागे अति दूर"– उपयोगिता का अभाव

खजूर का फल ऊँचाई पर होता है; न तो आसानी से मिलता है न सभी तक पहुँच पाता है।

सामाजिक अर्थ

कुछ लोग अपने ज्ञान, शक्ति, पद या संसाधनों को केवल अपने तक सीमित रखते हैं। वे दूसरों तक लाभ नहीं पहुँचने देते।उनके गुण, यदि कोई हों भी तो इतने दूर और कठिन पहुँच में हैं कि समाज को उनसे वास्तविक लाभ नहीं होता।

नैतिक और आध्यात्मिक संदेश

कबीर का दोहा स्पष्ट रूप में मानव धर्म पर आधारित है–

सच्चा बड़प्पन वह है जो दूसरों को लाभ पहुँचाए।

- जो ज्ञान बाँटता है, वही बड़ा है।
- जो छाया देता है, वही महान है।
- जो फल सभी को उपलब्ध करवाए, वही श्रेष्ठ है।
- जो अपने पद और शक्ति का उपयोग समाज की भलाई के लिए करता है, वही वास्तविकता में ऊँचा कहलाने लायक है।

खाली ऊँचाई अहंकार है; उपयोगिता ही महानता है।आधुनिक संदर्भ में यह दोहा कई प्रकार से लागू होता है–

1. बड़े पदों पर बैठे लोग– यदि वे समाज के लिए कार्य नहीं करते तो उनका पद व्यर्थ है।

2. धनी लोग– धन तभी श्रेष्ठ है जब उससे मानव सेवा का कार्य हो।
3. बड़े ज्ञान वाले लोग– यदि वे अपने ज्ञान को समाज तक नहीं पहुँचाते तो उनका ज्ञान खजूर के फल की तरह व्यर्थ है।
4. धार्मिक और आध्यात्मिक नेता– यदि उनके ज्ञान और उपदेश से समाज को लाभ न मिले तो उनकी दिखावटी ऊँचाई का कोई महत्व नहीं।

सांस्कृतिक दृष्टि से संदेश

भारतीय संस्कृति में वृक्षों को उपयोगिता के आधार पर महत्व दिया जाता है– नीम, पीपल, बरगद, आम– छाया, फल, औषधि और आश्रय देते हैं। कबीर इसी विरासत को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि मनुष्य भी तब तक सार्थक नहीं जब त कवह दूसरों का पोषण न करे।

कबीर का यह दोहा मानव–जीवन के वास्तविक मूल्य को अत्यंत सरल भाषा में बताता है। यह अहंकार, आडंबर, पद–गर्व और बाहरी बड़प्पन की आलोचना करता है और सिखाता है कि–

- उपयोगिता ही महानता है।
- दूसरों को लाभ पहुँचाना ही वास्तविक ऊँचाई है।
- जो स्वयं ऊँचा है पर दूसरों के किसी काम नहीं– उसका बड़प्पन खजूर के पेड़ जैसा है।

इस प्रकार यह दोहा केवल नैतिक शिक्षा ही नहीं देता बल्कि यह मानवतावादी दर्शन का भी सुंदर उदाहरण है।

देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।

बिपति पड़े यों छाड़सी, केंचुलि तजत भुजंग।।

कबीर का यह दोहा भक्ति की सच्चाई और दिखावे के बीच का अंतर अत्यंत प्रभावशाली प्रतीकों के माध्यम से स्पष्ट करता है। यहाँ कबीर बाह्य, अनुकरणात्मक और आडंबरपूर्ण भक्ति की आलोचना करते हुए आत्मानुभूति पर आधारित भक्ति को ही सार्थक मानते हैं।

"देखा–देखी भक्ति का"– अनुकरणात्मक भक्ति

दोहा की पहली पंक्ति में कबीर कहते हैं कि जो भक्ति केवल दूसरों को देखकर की जाती है, वह वास्तविक नहीं होती।"कबीर दिखावटी और अनुकरणात्मक भक्ति का विरोध करते हैं। उनके अनुसार देखा–देखी की भक्ति में आत्मिक अनुभूति का अभाव होता है और वह संकट की स्थिति में टिक नहीं पाती।"[1]

"देखा देखी" से तात्पर्य है–

- समाज में प्रचलित धार्मिक आडंबरों का अनुकरण
- बिना आत्मबोध के पूजा–पाठ
- लोकदिखावे के लिए धर्माचरण

कबीर के अनुसार ऐसी भक्ति का संबंध न तो हृदय से होता है और न ही अनुभव से। वह केवल सामाजिक स्वीकार्यता या भय से प्रेरित होती है। "आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार कबीर की भक्ति अनुभव–प्रधान और आडंबर–विरोधी है।[2]

"कबहुँ न चढ़सी रंग"–अनुभूति का अभाव

यहाँ 'रंग' शब्द अत्यंत अर्थपूर्ण है। भक्ति का 'रंग चढ़ना' अर्थात्–

- मन का परिवर्तन
- चेतना का रूपांतरण

- अहंकार का क्षय
- आत्मा में ईश्वर–प्रेम का स्थायी वास।

कबीर कहते हैं कि देखा–देखी की भक्ति में यह रंग कभी नहीं चढ़ता, क्योंकि उसमें समर्पण और आंतरिक जुड़ाव नहीं होता।

"बिपति पड़े यों छाड़सी"– संकट में भक्ति का छूट जाना

इस पंक्ति में कबीर बताते हैं कि जब जीवन में विपत्ति, दुख या संकट आता है, तब ऐसी नकली भक्ति तुरंत छूट जाती है। जिस भक्ति की जड़ें केवल बाहरी व्यवहार में होती हैं, वह कठिन समय की परीक्षा नहीं सह पाती।दोहे के दूसरे चरण में कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि "जब जीवन में विपत्ति आती है, तब ऐसी दिखावटी भक्ति तत्काल छूट जाती है। संकट की घड़ी ही किसी भी आस्था या साधना की वास्तविक परीक्षा होती है। जो भक्ति केवल बाह्य कर्मकाण्ड पर आधारित होती है, वह दुख और संघर्ष का सामना नहीं कर पाती।"[3]यहां कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि सच्ची भक्ति वही है जो–

- दुख में भी अडिग रहती है
- संकट में भी विश्वास बनाए रखती है
- परिस्थिति बदलने पर भी नष्ट नहीं होती।

"केंचुलि तजत भुजंग"– सशक्त प्रतीक

इस पंक्ति में प्रयुक्त साँप (भुजंग) और कंचुलि (पुरानी त्वचा) का प्रतीक अत्यंत प्रभावशाली है। जैसे–

- साँप समय आने पर अपनी केंचुलि त्याग देता है।
- वैसे ही संकट आते ही दिखावटी भक्ति भी त्याग दी जाती है।

यह तुलना बताती है कि नकली भक्ति स्थायी नहीं होती; वह केवल परिस्थिति आधारित होती है।कबीर ने 'केंचुलि तजत भुजंग' का अत्यंत सशक्त रूपक प्रस्तुत किया है। जैसे साँप समय आने पर अपनी पुरानी केंचुली त्याग देता है, वैसे ही संकट आने पर दिखावटी भक्ति भी त्याग दी जाती है। यह उपमा यह सिद्ध करती है कि सच्ची भक्ति वही है जो सुख–दुख दोनों स्थितियों में समान रूप से बनी रहती है।[4]

कबीर का यह दोहा आज के समय में चेतावनी देता है कि–**धर्म वही सार्थक है जो संकट में भी मनुष्य को नैतिक और आध्यात्मिक रूप से मजबूत बनाए।**इस दोहे में कबीर यह स्पष्ट करते हैं कि–

- दिखावटी भक्ति कभी आत्मा का रंग नहीं चढ़ा सकती
- संकट में वही भक्ति टिकती है जो हृदय से उपजी हो
- सच्ची भक्ति जीवन का स्थायी रूपांतरण करती है।

इस प्रकार यह दोहा भक्ति के बाह्य आडंबर का खंडन और आंतरिक साधना का समर्थन करता है तथा कबीर की निर्गुण, अनुभव प्रधान भक्ति दृष्टि को सशक्त रूप में प्रस्तुत करता है।

संदर्भ सूची

1. गुप्ता, ललिता, कबीर के दार्शनिक विचार, मुंबई, शांति प्रकाशन, वर्ष 2013।
2. डॉ द्वारिका प्रसाद सक्सेना, हिन्दी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि, विनोद पुस्कत मंदिर, आगरा, वर्ष 2006।
3. डॉ राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, कबीर ग्रंथावली, लखनऊ प्रकाशन केन्द्र।
4. अमरजीत सिंह, धार्मिक पाखंड और कबीरदास, दिल्ली, शांति बुक्स, 2018।
5. विजय कुमार, धर्म और मानवताः कबीर की दृष्टि, जयपुर साहित्य संदर्भ, वर्ष 2017।
6. डॉ रामविलास शर्मा, कबीर ग्रंथावली, हिन्दी साहित्य परिषद्, वर्ष 2003।
7. कबीर, बीजक, साखी, सपां श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराण्सी, पृ 45।
8. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ 67।
9. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ 132।
10. परशुराम चतुर्वेदी, कबीर साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन, साहित्य भवन, इलाहाबाद, पृ 98।

आधुनिक संदर्भ में कबीर

समकालीन समाज में कबीर की प्रांसगिकता

कबीर की वाणी युगों–युगों तक मानव समाज को दिशा देती रही है। कबीर न केवल एक भक्त कवि थे बल्कि वह एक समाज सुधारक, चिंतक और मानवता के उपासक भी थे। उनका चिंतन एक सीमित समय–काल या संप्रदाय तक सीमित नहीं रहा, बल्कि आज के आधुनिक, विविधतापूर्ण और तकनीकी युग में भी उतना ही प्रासंगिक है। उनका काव्य जाति, धर्म, पाखंड और अन्याय के विरूद्ध एक तीखा प्रतिरोध था। यद्यपि कबीर 15वीं सदी में थे किंतु उनकी वाणी और विचार आज 21वीं सदी के समाज में भी समान रूप से सार्थक व प्रेरणास्पद हैं। उनकी वाणी में जो समानता, सहिष्णुता, पाखंड–विरोध, सामाजिक चेतना आदि तत्व मौजूद हैं, वे आज की सामाजिक चुनौतियों के उत्तर देने में सक्षम हैं।

कबीर के विचारों की सार्वकालिकता–

कबीरदास भारतीय संत परंपरा के ऐसे विलक्षण कवि हैं, जिनकी वाणी समय, समाज और सीमाओं से परे है। वे केवल मध्यकालीन भारत के कवि नहीं थे, बल्कि सर्वकालिक चिंतक, समाज सुधारक और मानवतावादी दार्शनिक थे। उनके दोहों में जीवन का गूढ़ दर्शन, सामाजिक यथार्थ और मानवता की पुकार एक साथ सुनाई देती है। कबीर ने न केवल अपने समय के अंधविश्वासों और धार्मिक पाखंडों पर प्रहार किया, बल्कि मनुष्य को उसकी मूल पहचान "मानव होने" की याद दिलाई। कबीर का चिंतन

किसी विशेष काल या समाज तक सीमित नहीं है। उन्होंने ऐसे सत्य उद्घाटित किए जो हर युग और हर मनुष्य के लिए उपयोगी हैं।

"सार्वकालिकता" का अर्थ है– ऐसा विचार या दर्शन जो काल की सीमाओं से परे हो, जो हर युग में मानव समाज का मार्गदर्शन कर सके। कबीर के विचार समय के पार जाकर आज के युग में भी लागू होते हैं क्योंकि उन्होंने जो कहा वह मानव स्वभाव, समाज और सत्य के मूल प्रश्नों से जुड़ा है।वह कहते हैं–

"सांच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप,

जाके हृदय सांच है, ताके हृदय आप।"

यह दोहा केवल उस युग का नहीं, बल्कि आज भी हर नैतिक जीवन की कसौटी है।कबीर के विचारों की सार्वकालिकता का कारण यह है कि उन्होंने मनुष्य और समाज की जड़ों को छुआ। उनका दृष्टिकोण किसी एक धर्म, जाति या वर्ग तक सीमित नहीं था।

"एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले कौन मंदे।"

इस एक पंक्ति में वह गहरा भाव है जो मनुष्य को उसकी मूल समानता की याद दिलाता है। कबीर का यह विचार आज के उस समय में भी उतना ही प्रासंगिक है जहाँ जाति, धर्म और वर्चस्व की दीवारें अब भी मौजूद हैं।कबीर ने प्रेम और मानवता को जीवन का सर्वोच्च धर्म माना। उनके लिए प्रेम ही ईश्वर तक पहुँचने का माध्यम है। उनके विचार में ज्ञान का मूल्य तभी है जब करूणा और संवेदना हो। आज जब शिक्षा और विकास केवल भौतिकता तक सीमित हो गए हैं, तब कबीर की यह सीख और भी अर्थपूर्ण हो जाती है।

कबीर की वाणी में सामाजिक समानता की गहरी चेतना है। वे उस समय के जातिगत भेदभाव से जूझते हुए एक समरस समाज की कल्पना करते हैं। उनके विचार आज के लोकतांत्रिक समाज के उस आदर्श को अभिव्यक्त करते हैं जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार और सम्मान मिलना चाहिए। कबीर की दृष्टि में श्रेष्ठता का आधार केवल कर्म और ज्ञान है, न कि जन्म या जाति।

सामाजिक असमानता के विरोध में कबीर की वाणी–

कबीरदास ऐसे समय में प्रकट हुए जब समाज जाति, वर्ण और धर्म के नाम पर विभाजित था। उन्होंने निर्भीक होकर इस विषमता का विरोध किया। आज भी जातिवाद, छुआछूत और सामाजिक अन्याय के रूप बदलकर मौजूद हैं, अतः कबीर का संदेश आज भी उतना ही आवश्यक है। आज जब समाज में जाति–धर्म–वर्ग के आधार पर असमानता, विभाजन और भेदभाव उच्च स्तर पर हैं, कबीर की वाणी इन समस्याओं को सीधे संबोधित करती है। उनका संदेश था कि मनुष्य की श्रेष्ठता उसके कर्म–ज्ञान–स्वभाव से होनी चाहिए न कि उसकी जाति या जन्म से। 'जाति न पूछो साधू की' उनका यह दोहा सामाजिक समरसता का अच्छा उदाहरण है।

कबीर ने छुआछूत जैसी अमानवीय प्रथा का तीव्र विरोध किया। वे उन लोगों को आड़े हाथों लेते हैं जो बाहरी शुद्धता पर बल देते हैं परंतु अपने अंतर्मन को निर्मल नहीं करते। कबीर कहते हैं–

"जाति का गर्व न कर मूरख, कागा ऊपर राज,
गरूड़ पंख तजि उड़े, तो क्या कहे समाज।"

यहाँ कबीर व्यंग्य के माध्यम से बताते हैं कि ऊँची जाति या बाहरी प्रतिष्ठा का कोई मूल्य नहीं, यदि मनुष्य के भीतर करूणा, प्रेम और विनम्रता नहीं है।

कबीर की दृष्टि में सामाजिक असमानता केवल जाति तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह आर्थिक और धार्मिक दोनों स्तरों पर भी थी। उन्होंने अमीर–गरीब के बीच के भेद, मंदिर–मस्जिद की दीवारों और आडंबरपूर्ण धार्मिक व्यवहारों की आलोचना की। कबीर धार्मिक पाखंड के माध्यम से सामाजिक असमानता की जड़ों को उजागर करते हैं। वह कहते हैं कि ईश्वर या सत्य की प्राप्ति कर्म या भक्ति से होती है न कि बाहरी प्रदर्शन या उच्च सामाजिक दर्जे से।

कबीर की वाणी में सामाजिक समरसता की तीव्र आकांक्षा दिखाई देती है। वे उस वर्गीय और जातीय समाज को तोड़कर एक ऐसे समाज की स्थापना करना चाहते हैं जहाँ सभी मनुष्य समान हों। उनकी दृष्टि में ईश्वर का सच्चा भक्त वही है जो मनुष्य मात्र से प्रेम करता है। वे कहते हैं–

"हरि तो घर में सबन के, मन ही मंदिर होय,

कासी काबा एक हैं, हरि बसा सब लोय।"

यह विचार सामाजिक और धार्मिक एकता का संदेश देता है।आज जब समाज में वर्ग, जाति, धर्म और लिंग के आधार पर भेदभाव अब भी व्याप्त है, कबीर की वाणी पहले से अधिक प्रासंगिक लगती है। उनकी कविता हमें यह सिखाती है कि वास्तविक भक्ति या धर्म वह है जो सभी को समान दृष्टि से देखे। कबीर का यह संदेश न केवल मध्यकालीन भारत के लिए था, बल्कि हर उस युग के लिए है जहाँ असमानता और भेदभाव ने मानवीयता को कमजोर किया है।

उनकी वाणी में विद्रोह का स्वर है, पर वह विनाश का नहीं, परिवर्तन का विद्रोह है – ऐसा परिवर्तन जो मनुष्य को मनुष्य के प्रति संवेदनशील बनाए। कबीर का यह दृष्टिकोण हमें यह सिखाता है कि सामाजिक समानता केवल कानूनों से नहीं, बल्कि मनुष्यों के हृदय में परिवर्तन से संभव है। उनके दोहे आज भी हमें उस समरस समाज की ओर ले जाते हैं जिसकी नींव प्रेम, करूणा और समानता पर आधारित है।

कबीर का यह विचार आज भी उतना ही जीवंत है जितना उनके समय में था। उनकी वाणी हमें स्मरण कराती है कि असली भक्ति वही है जो समाज को जोड़ती है न कि बाँटती है। कबीर का संदेश मनुष्य के भीतर के अंहकार और बाह्य भेदभाव को मिटाकर एक ऐसे युग का आह्वान करता है जहाँ सभी मनुष्य एक समान हों – न कोई ऊँचा न नीचा, केवल मनुष्य।

धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय की आवश्यकता–

आज के समाज में जब धर्म के नाम पर बढ़ती हिंसा और वैमनस्य चिंताजनक है, तब धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक महसूस की जाती है धर्म का उद्देश्य सदैव मनुष्य के जीवन को संयम प्रेम करूणा और नैतिकता से भरना रहा है, परंतु जब धर्म के मूल भाव को भूलाकर उसे अहंकार, सत्ता या वर्चस्व का साधन बना दिया जाता है, तब वह समाज के लिए विभाजनकारी बन जाता है। इसी परिस्थिति में धार्मिक सहिष्णुता – अर्थात् दूसरे धर्मों, मतों और आस्थाओं के प्रति आदरपूर्ण दृष्टिकोण – समाज में शांति और सौहार्द का सबसे प्रभावी उपाय बनती है। कबीर ने अपने समय में ही इन संकीर्णताओं का विरोध करते हुए कहा है कि–

"कांकर पाथर जोड़ि के, मस्जिद लई बनाय,

ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय?"

कबीर का दृष्टिकोण धर्मों के बीच समन्वय और सहिष्णुता को बढ़ाता है। आज के समय में जब दुनिया धार्मिक असहिष्णुता से जूझ रही है, कबीर का समन्वयवाद प्रवचन काफी महत्वपूर्ण हो जाता है उन्होंने हिन्दू–मुस्लिम दोनों धर्मों में व्याप्त बाह्य आडंबरों को नकारते हुए 'परम सत्य' 'भक्ति का आन्तरिकता' और मानवता पर बल दिया। उनकी यह दृष्टि आज धार्मिक बहुलता वाले समाज में सहिष्णु और समन्वयी संबंधों का आधार बन सकती है। कबीर का यही दृष्टिकोण मानवता को एक सूत्र में बाँध सकता है।

भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता उसका समन्वयशील स्वभाव रहा है। यहाँ वेद, उपनिषद, जैन, बौद्ध, सूफी और भक्त परंपराएँ एक साथ पनपीं और एक दूसरे को समृद्ध करती रहीं। संत कवि कबीर, रैदास, नानक, दादू और मीरा जैसे भक्तों ने धार्मिक समरसता का जो संदेश दिया, वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है।

धार्मिक सहिष्णुता का अर्थ केवल यह नहीं कि हम दूसरों के धर्म को सहें, बल्कि यह कि हम उनमें छिपे सत्य और सौन्दर्य को पहचानें। जब हम यह स्वीकार करते हैं कि सभी धर्म मानवता, प्रेम और सत्य की ओर ले जाने वाले अलग–अलग मार्ग हैं, तब वास्तविक समन्वय संभव होता है। यह दृष्टि द्वेष और हिंसा के स्थान पर करूणा और सहयोग को जन्म देती है।

समाज में असहिष्णुता के बढ़ने का मुख्य कारण अज्ञान और संकीर्णता है। जब मनुष्य धर्म की आत्मा को नहीं समझ पाता, तब वह बाहरी रूप, परंपरा या मतभेदों में उलझ जाता है। परिणामस्वरूप धार्मिक

युद्ध, जातिगत संघर्ष और सामाजिक विभाजन जन्म लेते हैं। ऐसे समय में समन्वय की भावना ही समाज को बचा सकती है। यह समन्वय केवल धार्मिक स्तर पर नहीं, बल्कि सांस्कृतिक, सामाजिक और बौद्धिक स्तर पर भी आवश्यक है।

भारत जैसे विविधता–पूर्ण देश में सह–अस्तित्व ही हमारी पहचान है। यहाँ हिंदू–मुस्लिम, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि धर्मों के लोग एक साथ रहते आए हैं। यह विविधता तभी सुंदर बन सकती है जब उसमें समन्वय का भाव हो। यदि हम दूसरों के धर्म को नीचा दिखाकर अपने धर्म को श्रेष्ठ साबित करने की कोशिश करेंगे, तो समाज में केवल विभाजन और अविश्वास बढ़ेगा। लेकिन यदि हम एक–दूसरे से सीखेंगे और परस्पर सम्मान का भाव रखेंगे, तो यही विविधता हमारी सबसे बड़ी शक्ति बनेगी।

आधुनिक वैश्विक संदर्भ में भी धार्मिक सहिष्णुता अत्यंत आवश्यक है। आज जब पूरी दुनिया में सांप्रदायिक तनाव, युद्ध और आतंकवाद जैसी चुनौतियां बढ़ रही हैं, तब एकमात्र समाधान पारस्परिक समझ, सहिष्णुता और संवाद है। गाँधीजी ने कहा था–**"सभी धर्म सत्य हैं, परंतु किसी एक धर्म का सत्य सम्पूर्ण नहीं।"**

यह विचार दर्शाता है कि धार्मिक विविधता के भीतर भी एक गहरा एकत्व छिपा हुआ है, जिसे समझना ही सच्चे धर्म का लक्षण है।आज जब धार्मिक ध्रुवीकरण बढ़ रहा है, तो कबीर की यह पंक्ति अत्यंत प्रासंगिक प्रतीत होती है–

"माटी एक, देह अनेक, बिबिध रूप दिखाय।"

यह हमें याद दिलाती है कि भिन्नता के बावजूद हम सब एक ही मिट्टी से बने हैं और हमारा मूल स्त्रोत एक ही है। यदि हम इस सत्य को समझ लें तो धार्मिक सहिष्णुता अपने आप समाज का स्वभाव बन जाएगी।

अतः कहा जा सकता है कि धार्मि सहिष्णुता और समन्वय न केवल नैतिक आवश्यकता है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक अस्तित्व की भी शर्त है। जब तक मनुष्य एक–दूसरे के धर्म का आदर करना नहीं सीखता, तब तक सच्ची शांति और मानवता संभव नहीं। सहिष्णुता ही वह प्रकाश है जो अंधविश्वास और द्वेष के अंधकार को दूर कर सकती है।

आडंबर और पाखंड का विरोध–

कबीर का सबसे बड़ा योगदान यह था कि उन्होंने धर्म के नाम पर चल रहे बाह्याचारों का विरोध किया। जो समाज को भ्रमित कर रहे उनको उस भ्रम से निकालने का कार्य किया। वे सच्ची भक्ति को मन की शुद्धता से जोड़ते हैं न कि बाहरी दिखावे से।

आज के युग में जब भक्ति अक्सर दिखावे और लोभ से प्रभावित हो चुकी है, कबीर की वाणी से हमें यही संदेश मिलता हैं कि मनुष्य को आंतरिक साधना की ओर लौटना चाहिए और इस दिखावे की भक्ति से बचना चाहिए।

मानवता और समानता का संदेश–

कबीर का यह विचार कि सत्य, प्रेम और करूणा मानवता के मुख्य आधार हैं, आज के तकनीकी–वर्चुअल युग में और भी मूल्यवान हो गया है। जब सोशल मीडिया, कृत्रिम बुद्धिमता और उपभोक्तावाद मानव संबंधों को प्रभावित कर रहें हैं, कबीर की वाणी हमें स्मरण कराती है कि

'मनुष्य–मनुष्य से संबंध' और 'मानवता की सेवा' को उपेक्षित नहीं किया जाना चाहिए। कबीर की दृष्टि में सच्चा धर्म केवल एक है– मानव धर्म। उन्होंने कहा है–

"एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले कौन मंदे।"

यह विचार आज के वैश्विक समाज में मानवाधिकार, समानता और सामाजिक न्याय की नींव है। जब दुनिया जाति, वर्ग धर्म और राष्ट की सीमाओं में बँटती जा रही है, कबीर की यह वाणी हमें एकता और करूणा की राह दिखाती है।

पर्यावरणीय दृष्टि और सादगीपूर्ण जीवन–

कबीर ने सरल जीवन और संतोष के माध्यम से संतुलन का संदेश दिया। आज जब अति–भोग और उपभोक्तावाद ने मनुष्य को प्रकृति से दूर कर दिया है, कबीर का संदेश पहले से अधिक आवश्यक है।उनकी वाणी हमें संयम, संतोष और प्रकृति के प्रति कृतज्ञता का भाव सिखाती है–

"थोड़ा सुख संसार में, अधिक दुख का नेह,

कबीरा यह तनज जाएगा, रह जाएगा कह देह।"

यह दोहा हमें अस्थिरता और ममत्व से मुक्त होकर संतुलित जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

आधुनिक राजनीति और समाज के लिए सीख–

आज का राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य स्वार्थ, लोभ और विभाजन पर आधारित हो चला है। कबीर का जीवन इन सबका विकल्प प्रस्तुत करता है– सत्य, निष्कपटता और लोककल्याण।उनका यह विचार आज के शासकों और नागरिकों दोनों के लिए समान रूप से लागू होता है कि सच्ची प्रगति केवल नैतिकता और करूणा से संभव है।

आज के समाज में असहिष्णुता, द्वेष और भेदभाव तेजी से बढ़ रहे हैं। सोशल मीडिया, राजनीतिक प्रचार और झूठी सूचनाओं के प्रसार ने समाज को विभाजित कर दिया है। ऐसे में कबीर का यह संदेश अत्यंत प्रासंगिक है–

"एक नूर ते सब जग उपज्या, कौन भले कौन मंदे।"

यह पंक्ति हमें याद दिलाती है कि सभी मनुष्य एक ही सृष्टिकर्ता की संतान हैं। धर्म, जाति या भाषा के भेद के बावजूद हम सभी एक ही मानव परिवार के अंग हैं। यदि आधुनिक समाज इस विचार को आत्मसात कर ले तो न केवल सामाजिक सौहार्द स्थापित होगा, बल्कि लोकतंत्र भी सुदृढ़ होगा।

राजनीति में आज पारदर्शिता और नैतिकता का अभाव देखने को मिलता है। सत्ता प्राप्ति के लिए झूठ, लालच और हिंसा के साधनों का प्रयोग सामान्य हो गया है। गाँधीजी ने राजनीति में नैतिकता के महत्व को रेखांकित करते हुए कहा था कि "राजनीति धर्म से रहित नहीं हो सकती।" धर्म का अर्थ यहाँ संकीर्ण धार्मिकता नहीं, बल्कि सत्य, अहिंसा और न्याय के सिद्धांत हैं। कबीर की वाणी भी यही कहती है कि बिना आंतरिक शुद्धता के कोई समाज या शासन टिक नहीं सकता।

आधुनिक समाज को कबीर, गाँधी और अन्य संतों के संदेशों से यह सीख लेनी चाहिए कि सच्चा विकास केवल आर्थिक उन्नति में नहीं, बल्कि नैतिक और मानवीय उत्थान में है। जिस समाज में ईमानदारी, समानता और सहिष्णुता के मूल्य जीवित रहते हैं, वही दीर्घकालिक प्रगति कर सकता है। राजनीति का लक्ष्य सत्ता नहीं, सेवा होना चाहिए; समाज का लक्ष्य भोग नहीं, सहयोग होना चाहिए।

शिक्षा और मूल्यपरक दृष्टिकोण–

कबीर का मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि मानवता का विकास है। आज के समय में जब शिक्षा प्रतियोगिता और नौकरी तक सीमित हो गई है, उनका यह संदेश अत्यंत उपयोगी है। कबीर ने अपनी वाणी के माध्यम से लोगों को यह शिक्षा दी है कि वास्तविक ज्ञान वही है जिससे मनुष्य के भीतर प्रेम, विनम्रता और संवेदनशीलता का गुण उत्पन्न हो।

कबीर ने हिंदू व मुस्लिम पक्षों को उनके समुदायों के दोष बताए और उनके बीच सामंजस्य बनाकर एकता व भाईचारे का संदेश दिया।

"अरे इन दोउन राह न पायी।"

कबीर ने राम व रहीम को एक कहा। उनके अनुसार सब जन परमब्रह्म की संतानें हैं जिनको आपस में मिल–जुलकर रहना चाहिए। कबीर की चिंतन समय की सीमाओं से परे है। वे केवल संत कवि नहीं बल्कि समाज के जाग्रत विवेक थे। उनकी वाणी आज भी उतनी ही जीवंत है जितनी पांच सौ वर्ष पूर्व थी। जब तक समाज में असमानता, पाखंड, हिंसा और स्वार्थ रहेगा तब तक कबीर की आवाज प्रासंगिक रहेगी। उनका संदेश हमें यह सिखाता है कि–

"मनुष्यता ही सबसे बड़ा धर्म है।"

इसलिए समकालीन समाज में कबीर केवल इतिहास के अध्याय नहीं बल्कि वर्तमान की चेतना हैं–

एक ऐसी चेतना जों हमें समानता, सहिष्णुता और सच्चे मानव धर्म की राह दिखाती है। वह एक जीवित विचार शाखा हैं। उनकी वाणी हमें यह याद दिलाती है कि–

- समाज में असमानता, पाखंड़ और संकीर्णता को चुनौती देना आवश्यक है।
- धर्म, जाति, भाषा से ऊपर उठकर मानवता को स्वीकार करना चाहिए।
- बाहरी प्रदर्शन से अधिक महत्वपूर्ण मन की सच्चाई है।
- प्रेम, करूणा और समानता आधुनिक युग के लिए सबसे बड़ा मूल्य है।

जब तक ये मूल बातें समाज में कायम नहीं होंगी तब तक कबीर का संदेश अत्यंत प्रासंगिक बना रहेगा।

साहित्य, कला और जन आंदोलनों में कबीर

साहित्य में कबीर की उपस्थिति–

कबीरदास हिन्दी साहित्य के निर्गुण भक्तिधारा के सर्वाधिक प्रमुख कवि माने जाते हैं। उनका संग्रह 'बीजक' तीन भागों रमैनी, सबद और साखी में विभाजित है, जिनमें आध्यात्मिकता, सामाजिक आलोचना और मानवीय मूल्यों का अद्‌भुत संगम है।

कबीर के काव्य में लोकभाषा, लोकसंवेदना और जीवन के यथार्थ का अनूठा संगम मिलता है। उन्होंने उस समय की बोलचाल की भाषा – सधुक्कड़ी, अवधी, ब्रज और भोजपुरी मिश्रित खड़ी बोली – को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। इसलिए उनकी वाणी सीधे जनमानस से जुड़ी और लोक की आत्मा बन गई। वे विद्वानों या दरबारी कवियों की तरह अलंकारपूर्ण काव्य नहीं रचते, बल्कि समाज के आम व्यक्ति की भाषा में गहनतम दर्शन प्रकट करते हैं। यही कारण है कि कबीर की वाणी 'जनभाषा की कविता' कही जाती है।

कबीर का काव्य साधना और समाज दोनों का समन्वय है। उन्होंने शुद्ध भाव से ईश्वर की खोज की, परंतु किसी धर्म की सीमाओं में नहीं बंधे। उनका यह दृष्टिकोण आधुनिक साहित्य में भी गहराई से दिखता है–

- मुक्तिबोध, नागार्जुन, धूमिल जैसे कवियों ने कबीर की विद्रोही चेतना को अपनाया।
- अज्ञेय और हरिवंश राय बच्चन ने उनके आध्यात्मिक और लोकसंगीतात्मक स्वर को अपने काव्य में रूपांतरित किया।
- समकालीन दलित और जनपक्षधर साहित्य में कबीर की 'समानता की आवाज' जीवित है।

"साधो, यह मुरदों का गाँव।" यह पंक्ति आज भी सामाजिक जड़ता के विरोध का प्रतीक है।

साहित्य में कबीर की उपस्थिति केवल मध्यकाल तक सीमित नहीं रही। उनकी वाणी ने आगे चलकर भारतीय नवजागरण, गांधीवाद, समाजवाद और आधुनिक मानवतावाद तक को प्रेरणा दी। महात्मा गांधी ने कबीर के दोहों को 'जीवन–दर्शन का सरलतम रूप' कहा था। आधुनिक कवि रामधारी सिंह दिनकर, नागार्जुन, अज्ञेय और धर्मवीर भारती ने भी कबीर के विचारों को अपनी रचनाओं में नया स्वरूप दिया। कबीर का प्रभाव केवल हिंदी तक सीमित नहीं, बल्कि उर्दू, पंजाबी, गुजराती और बंगला साहित्य तक फैला। उनका साहित्य भारतीय सांस्कृतिक एकता का प्रतीक बन गया।

कबीर का काव्य केवल विचार नहीं, अनुभव की परिणति है। उनके शब्द सहज हैं, पर अर्थ गहरे हैं। उनकी वाणी में जो आत्मविश्वास और निर्भीकता है, वही साहित्य के लिए प्रेरणा स्त्रोत बनती है। वह कहते हैं–

"संत ना छाड़े संताई, चाहे लाख करे कोई,

सत्य की राह पर डटे रहना ही जीवन का धर्म है।"

यह वाणी साहित्य के नैतिक साहस की प्रतीक बन जाती है।आज के समय में जब साहित्य अक्सर विभाजन, बाजारवाद और राजनीति के दबाव में है, कबीर की उपस्थिति एक नैतिक दिशा के रूप में महसूस की जाती है। उनकी वाणी हमें यह सिखाती है कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि समाज को जागृत करना और मनुष्य के भीतर के सत्य को पहचानना है। कबीर की यह चेतना ही उन्हें कालजयी बनाती है।

कबीर का साहित्य भले ही सकैड़ों वर्ष पुराना हो, पर उसकी प्रासंगिकता आज भी अक्षुण्ण है। वे हमें यह सिखाते हैं कि सच्चा साहित्य वही है जो मनुष्य को भीतर से छू सके, जो समाज को जोड़ सके, और जो सत्य की खोज में साहसपूर्वक खड़ा रह सके। इस दृष्टि से कबीर न केवल हिंदी साहित्य के बल्कि विश्व साहित्य के भी अमर कवि हैं – जो आज भी अपने शब्दों से नई पीढ़ियों को जागरूक कर रहे हैं।

लोक–कला और संगीत परंपरा में कबीर–

कबीर की वाणी लोकभाषा में रची गई थी– खड़ीबोली, अवधी, ब्रज, भोजपुरी और पंजाबी के मिश्रण से। यही कारण है कि उनकी वाणी लोककला और लोकसंगीत में गहराई से रची–बसी है।

- **लोकगीतों में**– कबीर के भजन आज भी ग्रामीण भारत में गाए जाते हैं। मालवा, बनारस, बिहार, राजस्थान और पंजाब की लोकधुनों में 'कबीर के सबद' का विशेष स्थान है।
- **शास्त्रीय संगीत में**– कबीर के पदों को कई घरानों के गायकों ने ध्रुपद और भजन शैली में गाया है– कुमार गंधर्व, प्रह्लाद् सिंह

टिपानिया, मालिनी अवस्थी, पंडित छन्नूलाल मिश्र जैसे कलाकारों ने इन्हें अमर बना दिया।

- **कला और चित्रकला में**– कई चित्रकारों और मूर्तिकारों ने कबीर को 'आवाज के प्रतीक' के रूप में चित्रित किया– उनके चित्रों में कबीर अक्सर 'एकसूत्रता' और 'निर्गुणता' के प्रतीक रूप में दिखाई देते हैं।

"निरगुन आरा साधु कोई, सगुन न चिन्है कोई।"

यह पंक्ति आज भी कलाकारों को रूप से परे भाव की खोज की प्रेरणा देती है।

रंगमंच और फिल्म में कबीर–

कबीर की वाणी नाट्य और फिल्म कला में भी जीवित है।

- हबीब तनवीर, मृणाल सेन और शबाना आज़मी जैसे कलाकारों ने अपने नाटकों और फिल्मों में कबीर के गीतों और विचारों को केन्द्र में रखा।
- श्याम बेनेगल की फिल्म "अनुकूलन" और शबनम विर्मानी की डॉक्युमेंटी "Had-Anhad (सीमाएँ और सीमाएँ नहीं)" में कबीर की समन्वयवादी दृष्टि को प्रमुखता दी गई।
- आधुनिक थिएटर समूह "Naya Theatre" और "Rangayan" ने कबीर के सबद नाट्यरूपांतरणों को प्रस्तुत किया।

इन माध्यमों में कबीर केवल धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि लोकतांत्रिक चेतना के प्रतीक के रूप में उभरते हैं।

जन आंदोलनों में कबीर की प्रेरणा– कबीरदास ने अपने समय में अन्याय, पाखंड और भेदभाव के खिलाफ आवाज उठाई थी। यही स्वर आधुनिक भारत के जन आंदोलनों में भी सुनाई देता है।

- जेपी आंदोलन (1974), चिपको आंदोलन, दलित और आदिवासी आंदोलनों में कबीर की वाणी उद्धृत की गई।
- सामाजिक कार्यकर्ताओं– जैसे राजेंद्र सिंह(जलपुरूष), स्वामी अग्निवेश, अरूणा रॉय– ने अपने भाषणों और जनसभाओं में "कबीर का लोकसंदेश" प्रयोग किया।
- समकालीन आंदोलन "कबीर पंथी समाज" और "कबीर मेला" जैसी पहलें आज भी जनजागरण का माध्यम हैं।

कबीर के विचारों ने धर्मनिरपेक्षता, सामाजिक समानता और मानवीय एकता की नींव को सशक्त किया है।

समकालीन सृजन और वैश्विक मंचों पर कबीर–

कबीर की वाणी समय, समाज और भौगोलिक सीमाओं से परे जाकर सार्वभौमिक बन गई है। पंद्रहवीं शताब्दी में रचित उनके पद और दोहे आज भी न केवल भारतीय समाज में प्रांसगिक हैं, बल्कि विश्व के विभिन्न देशों में भी उनकी गूंज सुनाई देती है। कबीर की भाषा युगों को लाँघकर समकालीन सृजन का हिस्सा बन चुकी है। चाहे वह साहित्य हो, संगीत हो, रंगमंच हो या सिनेमा। आधुनिक युग के रचनाकारों ने कबीर को केवल एक ऐतिहासिक संत या कवि के रूप में नहीं, बल्कि मानवता, स्वतंत्रता और आत्मबोध के वैश्विक प्रतीक के रूप में पुनः खोजा है।

समकालीन सृजन में कबीर की उपस्थिति सबसे पहले उनके मानवीय दृष्टिकोण के कारण दिखाई देती है। उनका संदेश है– "मनुष्य ही सत्य का

केंद्र है।" वे किसी धर्म, जाति या विचारधारा की सीमाओं में नहीं बंधते। यही कारण है कि आज के लेखक, कवि और कलाकार कबीर की वाणी से प्रेरणा लेकर अपने समाज और समय के प्रश्नों पर पुनर्विचार कर रहे हैं। कबीर का 'अनुभववाद', 'विद्रोह' और 'अंतरआत्मा की स्वतंत्रता' का भाव आधुनिक साहित्य में गहराई से प्रतिधनित हो रहा है। समकालीन कवि जैसे दुष्यंत कुमार, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और कुमार विश्वास तक ने कबीर की निर्भीक वाणी को अपने स्वर में ढ़ाला है।

आज कबीर की वाणी केवल भारत तक सीमित नहीं रही, विश्व स्तर पर कबीर की उपस्थिति और भी प्रभावशाली है–

- फ्रांसीसी, जर्मन और अंग्रेजी अनुवादों में Kabir: Ecstatic Poems (Robert Bly) और Songs of Kabir (Rabindranath Tagore) विश्व साहित्य में उनका स्थान सुनिश्चित करते हैं।
- संगीतकार प्रेम जोशुआ, आनंदमूर्ति गुरू माँ और राहुल राम जैसे कलाकारों ने कबीर को आधुनिक संगीत से जोड़ा।
- अंतरराष्ट्रीय मंचों पर "Kabir Project" (Shabnam Virmani) ने उनके विचारों को सीमाओं के पार पहुँचाया।

कबीरदास का प्रभाव साहित्य, कला और समाज तीनों ही स्तरों पर अद्वितीय है। वह केवल शब्दों के कवि नहीं, बल्कि विचार और क्रांति के कवि हैं। कबीर की वाणी में लोक की भाषा है, पर अर्थ वैश्विक हैं।

कबीर की वैश्विक उपस्थिति इस बात का प्रमाण है कि उनकी वाणी किसी धर्म, भूगोल या काल से बंधी नहीं। वे केवल भारत के नहीं, बल्कि संपूर्ण मानवता के कवि हैं। उनकी वाणी में जो 'एकत्व' और 'प्रेम' का दर्शन है। वही विश्वशांति, सहअस्तित्व और बाहुलता के मूल्यों का आधार

है। जब विश्व सभ्यता अलगाव, हिंसा और असमानता के संकट से गुजर रही है, तब कबीर की वाणी–

"ऐसा कोई ना मिल्या, हमको दे उपदेश,

जैसे मैं दीसूं तैसा तू दीस।"

मनुश्य को उसकी आत्मा से जोड़ने वाली सार्वभौमिक पुकार बन जाती है।

इस प्रकार कबीर की उपस्थिति समकालीन सृजन में केवल प्रेरणा नहीं, बल्कि एक बौद्धिक और नैतिक आधार है। उनका दर्शन वैश्विक संवाद का हिस्सा बन चुका है – जहाँ भारत की लोक चेतना और विश्व की आधुनिक चेतना एक दूसरे से मिलती हैं। यही कारण है कि कबीर आज भी संत कवि भर नहीं, बल्कि वैश्विक विचार–आंदोलन के प्रतीक के रूप में जीवित हैं।

आज के समय में जब समाज विभाजन, पाखंड और समानता से जूझ रहा है, कबीर की वाणी एक दिशा–दीपक की तरह है जो हमें समानता, सत्य और मानवता की राह दिखाती है।

"कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ,

जो घर फूंके आपना चले हमारे साथ।"

यह केवल दोहा मात्र नहीं है बल्कि आज के समाज के लिए जागरण का आह्वान है।

आधुनिक विचारधाराओं में कबीर का स्थान

कबीरदास भारतीय चेतना के ऐसे कवि हैं जिनकी वाणी समय, समाज और सीमाओं से परे है। उनकी कविता का लक्ष्य केवल धार्मिक या भक्तिपरक नहीं था, बल्कि मानव–मूल्यों, समानता और सत्य की खोज था।

आधुनिक युग में जब समाज वर्ग, जाति, धर्म और राजनीति के बंधनों में उलझा हुआ है, तब कबीर के विचार आधुनिक मानवीय दर्शन, समाजवाद, अस्तित्ववाद और धर्मनिरपेक्षता के प्रमुख स्तंभों से गहराई से जुड़ते हैं।

आधुनिक मानवीय दृष्टिकोण और कबीर–

कबीर की मूल दृष्टि मानव–केंद्रित थी। उनके लिए ईश्वर का अर्थ था– मानव में निवास करने वाला सत्य। वे कहते हैं–

"मोको कहाँ ढूंढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।"

यह विचार आज के मानववाद से पूर्णतः संगत है, जहाँ मनुष्य को ही ब्रह्मांड का केन्द्र माना गया है।कबीर का यह संदेश किसी अलौकिक सत्ता की नहीं, बल्कि अंतरात्मा की खोज का है। इस दृष्टि से वे रेने डेसकार्ट्स और जाँ पॉल सार्त्र के मानववादी दर्शन के समानांतर प्रतीत होते हैं।

कबीर के मानवीय दृष्टिकोण का सबसे बड़ा आधार "एकत्व" की भावना है। वे मानते हैं कि संपूर्ण सृष्टि एक ही ईश्वर की संतान है, इसलिए किसी प्रकार का भेदभाव निरर्थक है। आज जब मनुष्य धर्म, भाषा, जाति और वर्ग के नाम पर विभाजित हो रहा है, कबीर की वाणी हमें यह याद दिलाती है कि सच्ची मानवता उन सीमाओं से परे है जिन्हें मनुष्य ने स्वयं बनाया है।

आधुनिक युग में विज्ञान और तकनीक ने भौतिक समृद्धि तो दी है, परंतु मनुष्य के भीतर की करूणा और नैतिकता को क्षीण कर दिया है। प्रतिस्पर्धा, स्वार्थ और उपभोग की संस्कृति ने मनुष्य को यांत्रिक बना दिया है। ऐसे समय में कबीर की वाणी हमें आत्मबोध और सह–अस्तित्व की ओर लौटने की प्रेरणा देती है। जब मनुष्य अपने भीतर प्रेम और शुद्धता का भाव जगाता है, तभी समाज और विश्व में वास्तविक मानवता संभव होती है।

कबीर का मानवीय दृष्टिकोण केवल नैतिक उपदेश नहीं है, बल्कि एक जीवंत जीवन–दर्शन है। उन्होंने मानव जीवन को कर्म, प्रेम और सत्य के आधार पर जीने की शिक्षा दी। उनके अनुसार जो व्यक्ति दूसरों के दुख में सहभागी होता है, वही सच्चा भक्त और मानव है।

कबीर का मानवतावाद इस बात पर बल देता है कि ईश्वर की खोज किसी तीर्थ, ग्रंथ या पूजा–पद्धति में नहीं, बल्कि प्रत्येक मनुष्य के भीतर है। इसलिए जो व्यक्ति दूसरों में ईश्वर को देखना सीख जाता है, वही सच्चे अर्थों में धार्मिक होता है। इस दृष्टि से कबीर का मानवीय दर्शन आधुनिक मानवतावाद की नींव है – ऐसा मानवतावाद जो किसी मत, धर्म या संस्था पर नहीं, बल्कि करूणा और समरसता पर आधारित है।

कबीर के विचारों से आधुनिक समाज यह सीख सकता है कि वास्तविक प्रगति केवल तकनीकी या आर्थिक उन्नति में नहीं, बल्कि मानव हृदय की विशालता में निहित है। जब तक मनुष्य दूसरों के दुःख को अपना नहीं समझेगा, तब तक कोई भी सभ्यता सच्चे अर्थों में मानवीय नहीं बन सकेगी। इसलिए कबीर की वाणी आज भी हमें आह्वान करती है–

"मन का सुधरै सब सुधरै, मन का बिगड़ै सब बिगड़ै।"

उनकी यह उक्ति बताती है कि आधुनिक समाज की सारी समस्याओं का समाधान मनुष्य के भीतर ही है– बाहरी जगत को सुधारने से पहले हमें अपने भीतर की मानवता को जगाना होगा।

कबीर का यह दृष्टिकोण केवल धार्मिक या दार्शनिक नहीं, बल्कि व्यावहारिक है। उन्होंने जो जीवन जिया, वही उनकी वाणी का सत्य प्रमाण था– सरलता, करूणा, साहस और समानता का जीवन। यही कारण है कि कबीर केवल एक संत नहीं, बल्कि मानवता के सच्चे दूत माने जाते हैं।

कबीर और समाजवादी विचारधारा–

कबीरदास का समस्त काव्य समानता, श्रम और अन्याय के विरोध पर आधारित है। उन्होंने शोषक वर्ग की आलोचना की और श्रमशील जनता की प्रतिष्ठा की।

"साईं इतना दीजिए, जा में कुटुम समाय,

मैं भी भूखा न रहूँ, साधू न भूखा जाय।"

इस दोहे में आत्मनिर्भरता, श्रम और सामाजिक न्याय की भावना स्पष्ट है। यह दृष्टि आधुनिक समाजवादी विचारधारा से मेल खाती है– जहाँ समाज की आर्थिक समानता और श्रम की गरिमा को सर्वोपरि माना गया है।

मार्क्सवाद में जैसे वर्गविहीन समाज का स्वप्न है, वैसे ही कबीर के यहाँ भी जाति–विहीन और भेदरहित समाज का विचार मिलता है। कबीर की वाणी में सामाजिक न्याय और समानता का जो स्वर सुनाई देता है वह किसी राजनीतिक विचारधारा से नहीं अपितु उनके जीवनानुभव से उपजा है। वे स्वयं समाज के निचले वर्ग से थे, जुलाहा समुदाय से संबंधित। इसलिए उन्होंने समाज की पीड़ा को भीतर से अनुभव किया और अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाई।

कबीर ने जन्म आधारित ऊँच–नीच के बजाय कर्म और ज्ञान के आधार पर मूल्यांकन की बात की है– यही तो समाजवाद का मूल सिद्धांत है जहाँ अवसर और सम्मान सभी को समान रूप से प्राप्त हों।कबीर के समाजवादी दृष्टिकोण में आर्थिक समानता का भी गहरा भाव है। वे श्रम को सर्वोच्च मानते हैं। उनके लिए जुलाहा, किसान या कुम्हार– सभी ईश्वर के समान अंश हैं।

कबीर न धनसंपन्नता की आकांक्षा करते हैं, न गरीबी के महिमामंडन में विश्वास रखते हैं। वे श्रम के आधार पर आत्मनिर्भर जीवन को आदर्श मानते हैं, जो समाजवादी विचारधारा में 'समान वितरण' और 'आवश्यकता के अनुसार संसाधनों की उपलब्धता' के सिद्धांत से मेल खाता है।

कबीर के समाजवादी विचार केवल आर्थिक समानता तक सीमित नहीं हैं; वे सामाजिक संरचना को भी बदलने की बात करते हैं। उन्होंने ऊँच–नीच, अस्पृश्यता और संप्रदायिक भेद को मानवता के विरूद्ध माना।

कबीर और धर्मनिरपेक्षता–

कबीर ऐसे समय में जन्मे जब हिंदू–मुस्लिम मतभेद अपने चरम पर थे। उन्होंने दोनों धर्मों की अंधभक्ति और पाखंड का विरोध किया। उनका संदेश था– धर्म का नहीं, धर्मिता का पालन करो।

"मस्जिद चढ़ि कर मौलवी, क्या बहरा हुआ खुदाय?

ढूँढ़े तो घर भीतर, साईं तो है निकटाय।"

यह विचार आधुनिक भारतीय धर्मनिरपेक्षता का आधार है, जहाँ धर्म व्यक्तिगत आस्था है, न कि सामाजिक विभाजन का कारण।कबीर का दृष्टिकोण संविधान में उल्लिखित समानता और सहिष्णुता की भावना से मेल खाता है। कबीर की वाणी में धर्म का अर्थ किसी संस्था, पंथ या आचार–विधान से नहीं, बल्कि मनुष्य की आंतरिक पवित्रता और सच्चाई से है। उनका दृष्टिकोण मूलतः मानव–केन्द्रित है। वे किसी धर्म या संप्रदाय के अनुयायी नहीं थे, बल्कि उन्होंने दोनों के पाखंडों पर समान रूप से प्रहार किया।

कबीर का धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण केवल धार्मिक सहिष्णुता तक सीमित नहीं है, बल्कि वह मानव समानता की अवधारणा तक विस्तृत है। उनके लिए हर मनुष्य समान है, चाहे उसकी जाति, धर्म या लिंग कुछ भी हो।

वास्तव में कबीर का धर्मनिरपेक्षता का भाव किसी पश्चिमी सिद्धांत से ग्रहण नहीं किया गया, बल्कि यह भारतीय लोकजीवन और आध्यात्मिक परंपरा से उपजा हुआ है। उनका धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप 'सर्वधर्म समभाव' पर आधारित है– जो न केवल सह–अस्तित्व की बात करता है, बल्कि एकता की भावना को भी पुष्ट करता है। कबीर के लिए राम और रहीम, काशी और काबा, मंदिर और मस्जिद सब एक हैं, क्योंकि सत्य एक है और उसे प्राप्त करने के मार्ग अनेक हैं।

आज जब धार्मिक राजनीतिक, कट्टरता और असहिष्णुता का वातावरण फैल रहा है, कबीर की वाणी हमें स्मरण कराती है कि सच्चा धर्म वह है जो मनुष्य को जोड़ता है, बाँटता नहीं। कबीर का यह संदेश आधुनिक भारत की धर्मनिरपेक्ष चेतना का नैतिक और सांस्कृतिक आधार बन सकता है। उन्होंने अपने जीवन और वाणी से यह सिद्ध किया कि धर्म मनुष्य के भीतर का प्रकाश है न कि बाहरी पहचान। यही कारण है कि वे केवल एक संत या कवि नहीं, बल्कि भारतीय धर्मनिरपेक्षता के अग्रदूत हैं।

कबीर और अस्तित्ववाद–

कबीर का चिंतन मनुष्य के अस्तित्व, उसके आत्मबोध, स्वतंत्रता और जीवन के सार्थक अर्थ की खोज से जुड़ा हुआ है। यदि आधुनिक दर्शन के संदर्भ में देखा जाए तो कबीर की वाणी में अस्तित्ववाद के अनेक तत्व दिखाई देते हैं। यह अद्भुत तथ्य है कि 15वीं शताब्दी में कबीर जिन प्रश्नों पर विचार कर रहे थे– "मैं कौन हूँ?", "जीवन का उद्देश्य क्या है?" "सत्य

क्या है?" – वे वही प्रश्न हैं जिन पर 19वीं और 20वीं शताब्दी के अस्तित्ववादी दार्शनिक जैसे कि कीर्केगार्दे, नीत्शे, हाइडेगर और सार्त्र ने चिंतन किया। कबीर के दर्शन में जीवन, मृत्यु और आत्मा के प्रश्नों पर गहन चिंतन मिलता है। वे कहते हैं–

"जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाहीं।"

यह पंक्ति अस्तित्व और अनस्तित्व के द्वंद्व को व्यक्त करती है। आधुनिक अस्तित्ववाद में भी मनुष्य के अकेलेपन और अर्थ–खोज की यही प्रक्रिया दिखाई देती है।

कबीर के लिए बाहरी जीवन का अर्थ बाहरी सत्ता में नहीं, बल्कि स्वयं की अनुभूति में है – जो उन्हें कीर्केगार्द और सार्त्र जैसे विचारकों के निकट लाता है।

अस्तित्ववाद का मूल स्वर व्यक्ति की स्वतंत्रता, आत्मचेतना और अपने अस्तित्व के प्रति जागरूकता में निहित है। कबीर की वाणी में भी यही स्वर गूँजता है। वे किसी बाहरी ईश्वर, धर्म या संस्था में विश्वास नहीं करते, बल्कि मनुष्य को उसके भीतर के सत्य की खोज करने के लिए प्रेरित करते हैं।

कबीर का आत्मबोध अस्तित्ववादी चिंतन की नींव से मेल खाता है और उनका 'अनुभववाद' यहाँ अस्तित्ववाद के "Subjective Truth" से मेल खाता है – कि सत्य व्यक्ति के अनुभव में ही निहित है, न कि किसी बाहरी व्यवस्था या पुस्तक में।

अस्तित्ववाद का एक प्रमुख सिद्धांत है – वैयक्तिक स्वतंत्रता और जिम्मेदारी। मनुष्य अपने कर्मों और निर्णयों के लिए मुक्ति बाहरी पूजा या कर्मकाण्ड़ से नहीं, बल्कि स्वयं की चेतना के जागरण से संभव है। यह वही

विचार है जिसे सार्त्र ने "मनुष्य अपनी स्वतंत्रता का निर्माता है" कहकर प्रतिपादित किया।

कबीर का 'निराकार' ईश्वर भी अस्तित्ववादी चिंतन का प्रतीक है। वे कहते हैं–**"अलख निरंजन नाम तिहारा, सब में तू व्यापक है।"**

यहाँ 'अलख' वह सत्य है जिसे देखा नहीं जा सकता, पर अनुभूत किया जा सकता है। कबीर का यह रहस्यवादी दृष्टिकोण अस्तित्ववाद के उस विचार से जुड़ता है जिसमें व्यक्ति अपने 'अस्तित्व' की गहराई में उतरकर 'अर्थ' की खोज करता है। कबीर के लिए यह अर्थ 'नाम', 'सत्य' और 'प्रेम' के अनुभव में निहित है।कबीर ने जीवन को एक संघर्ष और खोज के रूप में देखा है। वे कहते हैं–

"जिन खोजा तिन पाया, गहरे पानी पैठ,

मैं बपूरा बुडन डरा, रहा किनारे बैठ।"

यहाँ 'गहरे पानी पैठना' उस साहस का प्रतीक है जो मनुष्य को अपने अस्तित्व की सच्चाई का सामना करने के लिए चाहिए। अस्तित्ववाद में भी यही भाव मिलता है– कि मनुष्य को अपने जीवन की निरर्थकता और चिंता से भागना नहीं चाहिए, बल्कि उसे स्वीकार कर उसके भीतर अर्थ की खोज करनी चाहिए। कबीर इसी अस्तित्वगत साहस का आह्वान करते हैं।कबीर की वाणी में 'अकेलेपन' और 'आत्मसंघर्ष' का जो भाव है, वह भी अस्तित्ववादी है।

आज के युग में जब मनुष्य अस्तित्वगत संकट से गुजर रहा है– जब जीवन की गति तेज है, पर अर्थ खो गया है – तब कबीर की वाणी पहले से भी अधिक प्रासंगिक हो उठती है। उनका संदेश है कि सत्य की खोज बाहर नहीं, भीतर करो; क्योंकि ईश्वर, अर्थ और मुक्ति– सब तुम्हारे भीतर

हैं। यही कबीर का 'आत्मसाक्षात्कार' अस्तित्व के "self-realization"का भारतीय रूप है।

इस प्रकार कबीर और अस्तित्ववाद के बीच गहरा अंतर्संबंध है। दोनों व्यक्ति की स्वतंत्रता, अनुभव और आत्मबोध को सर्वोच्च मानते हैं। फर्क केवल इतना है कि पश्चिमी अस्तित्ववाद जीवन की निरर्थकता और चिंता से जूझता है, जबकि कबीर का अस्तित्ववाद इस चिंता का समाधान प्रेम, भक्ति और आत्मज्ञान में खोजता है। यदि सार्त्र का मनुष्य 'स्वतंत्र' है तो कबीर का मनुष्य 'मुक्त' है– और यह मुक्ति केवल आत्मज्ञान से आती है।

कबीर की यह दार्शनिक दृष्टि आधुनिक अस्तित्ववाद से पहले ही उस सत्य की झलक देती है जिसे पश्चिम ने बहुत बाद में खोजा। उन्होंने कहा था–

"मन के मते न चलिए, मन के मते बहुराय,

मन के मते जो चलि रहै, सिर काट धरि जाए।"

यह दोहा मनुष्य को चेताता है कि जब त कवह अपने भीतर के सत्य को नहीं पहचानता, तब तक उसका जीवन भ्रम में रहेगा। यही वह संदेश है जो कबीर को भारतीय अस्तित्ववादी चिंतन का आरंभिक प्रवर्तक बनाता है।

कबीर और स्त्री–चेतना–

कबीर ने मध्यकालीन समाज में स्त्री की स्थिति, उसकी भूमिका और उसके प्रति समाज के दृष्टिकोण पर गहराई से विचार किया। उनकी वाणी में स्त्री के प्रति गहरा सम्मान, संवेदना और आत्मीयता का भाव है, यद्यपि कभी–कभी उनके कुछ दोहे आलोचकों द्वारा स्त्री विरोधी समझे गए हैं। वस्तुतः कबीर का दृष्टिकोण स्त्री को सामाजिक और आध्यात्मिक दोनों ही

स्तरों पर मनुष्य के रूप में देखने का है – न कि भोग्या या हीन अस्तित्व के रूप में।

कबीर का युग स्त्री के लिए अंधकारमय काल था। समाज में स्त्री को दोयम दर्जा दिया गया था, उसे केवल घर की चारदीवारी तक सीमित रखा गया। उसे शिक्षा, स्वतंत्रता और निर्णय के अधिकार से वंचित रखा गया था। ऐसे समय में कबीर की वाणी एक विद्रोही स्वर के रूप में उभरती है, जो इस असमानता के विरूद्ध बोलती है। कबीर स्त्री को केवल 'देह' नहीं, बल्कि 'जीव चेतना' का रूप मानते हैं। वे स्त्री और पुरूष दोनों को ईश्वर की एक ही सृष्टि मानते हैं। उनके लिए दोनों का स्थान समान है, क्योंकि आत्मा का कोई लिंग नहीं होता।

कबीर के दोहों में स्त्री का सम्मान और आत्मिक समानता का भाव मिलता है–

"नारी नर सम जानिए, दोनों खेलत एकै रंग।"

यह पंक्ति आधुनिक नारीवादी विचारधारा की मूल भावना से जुड़ती है। कबीर नारी को मोक्ष और प्रेम दोनों की सहयात्राी मानते हैं, न कि पाप या प्रलोभन का कारण।

कबीर का स्त्री दृष्टिकोण केवल सामाजिक ही नहीं बल्कि आध्यात्मिक भी है। उनके काव्य में 'नारी' अनेक स्तरों पर आती है – वह माँ है, प्रेमिका है, साधक है और साधना का प्रतीक भी। कबीर ने आत्मा और परमात्मा के संबंध को नारी–पुरूष के प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। 'सखी' या 'प्रिय' के रूप में आत्मा की तड़प और मिलन की चाहना को उन्होंने बहुत सजीव रूप में चित्रित किया है। इस दृष्टि से

कबीर की नारी चेतना केवल देह संबंधी नहीं, बल्कि आत्मिक और सार्वभौमिक है।

फिर भी यह सत्य है कि कबीर ने कुछ स्थानों पर 'स्त्री' को माया, मोह या आकर्षण का प्रतीक मानते हुए उसके प्रति सावधानी की बात की है। जैसे उन्होंने कहा–

"नारी की जाति बुरी, मत भुलियो चौकस रहियो।"

ऐसे कथनों को यदि सतही रूप में देखा जाए तो यह स्त्री–विरोध प्रतीत होता है, परंतु गहराई से समझने पर स्पष्ट होता है कि यह किसी स्त्री के नहीं, बल्कि वासना और आसक्ति के प्रतीक की आलोचना है। कबीर की भाषा रूपक और प्रतीकात्मक है; वे 'नारी' शब्द का प्रयोग कई बार भौतिक मोह के रूप में करते हैं, जिससे साधक को सावधान रहने की प्रेरणा मिलती है। इसलिए यह कहना उचित नहीं होगा कि कबीर स्त्री–विरोधी' थे– वे तो भोग–वृति के विरोधी थे।

कबीर और आधुनिक जनचेतना–

आज के समय में जब भेदभाव, हिंसा और असहिष्णुता बढ़ रही है, कबीर का विचार समन्वयवाद, संवाद और विवेक का प्रतीक बन गया है। **"कबीर प्रोजेक्ट"** जैसी आधुनिक पहलें उनके विचारों को युवाओं तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण हैं। उनकी वाणी अब सामाजिक परिवर्तन, शिक्षा, पर्यावरण आंदोलन और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का आधार बन गई है।

कबीर का व्यक्तित्व मूलतः जनसाधारण से जुड़ा था। वे स्वयं एक श्रमिक वर्ग से आए, जुलाहा समुदाय में जन्मे और श्रम को जीवन का आधार माना। उनका जीवन ही जन–जीवन की कठिनाईयों, संघर्षों और अनुभवों का प्रतीक था। इसीलिए उनकी वाणी लोक से जुड़ी हुई है – वह

राजमहलों की नहीं, बल्कि चौपालों, करघों और गलियों की भाषा बोलती है। कबीर की कविताएं जन–संवेदना की सशक्त अभिव्यक्ति हैं; उनमें शोषण, अन्याय, पाखंड और असमानता के विरूद्ध जनता की आवाज मुखर होती है। यही कारण है कि उन्हें भारतीय समाज में जन चेतना के प्रथम प्रवर्तक कवियों में गिना जाता है।

कबीर की वाणी में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने धर्म और समाज के नाम पर होने वाले अन्याय का खुलकर विरोध किया। वे न हिंदू थे, न मुसलमान – बल्कि दोनों के बाह्य आडंबरों से परे मनुष्यत्व के पक्षधर थे। आधुनिक समाज में जब धर्म के नाम पर राजनीति औश्र सामाजिक विभाजन बढ़ रहा है तब कबीर की यह आवाज जन चेतना को फिर से सशक्त बनाती है। वे हमें याद दिलाते हैं कि सच्चा धर्म भीतर की शुद्धता में है न कि बाहरी आडंबर में।

कबीर ने समाज के हर वर्ग को संबोधित किया। उनके दोहे राजा, पुजारी, मौलवी और साधारण जनता – सब पर समान रूप से लागू होते हैं। वे सत्ता और संस्था की आलोचना करते हुए कहते हैं–**"माया महा ठगिनी हम जानी, तिरगुन फाँस लिए कर डोले।"**

यहाँ माया केवल धन या मोह का प्रतीक नहीं, बल्कि उस सामाजिक संरचना का प्रतीक है जो साधारण जनता को भ्रम में रखकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करती है। कबीर इस ढ़ाँचे को तोड़कर एक ऐसी समाज व्यवस्था की कल्पना करते हैं जहाँ जन का हित सर्वोपरि हो। यही भाव आधुनिक जन चेतना का मूल है– जन के अधिकारों, समानता और न्याय के लिए संघर्ष।

कबीर की वाणी में विरोध नहीं, परिवर्तन की चेतना है। वे केवल व्यवस्था की आलोचना नहीं करते, बल्कि मनुष्य के भीतर चेतना जगाने की बात करते हैं। उन्होंने कहा–

"मन के मति फेरि दे, घर का घर ही धाह।"

उनका आशय था कि समाज में परिवर्तन तभी संभव है जब व्यक्ति अपने भीतर की जड़ता, अंधविश्वास को त्यागे। आज जब आधुनिक समाज उपभोक्तावाद, स्वार्थ और भौतिकता की चपेट में है, कबीर की यह चेतावनी अत्यंत प्रासंगिक है। जन चेतना का आरंभ व्यक्ति के अतःकरण से ही होता है।

कबीर के विचारों में एक अद्‌भुत लोकतांत्रिक दृष्टि भी निहित है। वे मनुष्य की समानता, श्रम की गरिमा और विचार की स्वतंत्रता में विश्वास करते हैं।

आधुनिक युग की जन चेतना में जब जनता अपने अधिकारों, सम्मान और समान अवसरों की माँग करती है त बवह कहीं न कहीं कबीर की परंपरा को ही आगे बढ़ा रही होती है। चाहे गांधीजी का सत्याग्रह आंदोलन हो, लोहिया का 'समानता आंदोलन' हो या समकालीन किसान और श्रमिक आंदोलनों की चेतना – इन सबमें कबीर की वाणी की छाया दिखाई देती है। गांधी स्वयं कहते थे कि कबीर का 'सत्य' और 'अहिंसा' का संदेश भारतीय आत्मा का सच्चा स्वर है।

आज के समाज में जब सूचना क्रांति और तकनीकी विकास के बावजूद नैतिक पतन, धार्मिक विभाजन और सामाजिक असमानता बनी हुई है, तब कबीर की वाणी पुनः प्रासंगिक हो उठती है। उनकी भाषा सरल है पर अर्थ गहरे हैं। वे हमें यह सिखाते हैं कि वास्तविक जन चेतना केवल

नारों और संघर्षों से नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर के परिवर्तन से पैदा होती है।

इस प्रकार कबीर का योगदान केवल मध्यकालीन समाज तक सीमित नहीं है। उनकी वाणी आज भी सामाजिक अन्याय, भेदभाव, अंधविश्वास और पाखंड के खिलाफ जनमानस को प्रेरित करती है। कबीर ने जो चेतना अपने समय में जलाई थी वह आज भी आधुनिक समाज के लिए प्रकाशस्तंभ है। वे हमें सिखाते हैं कि परिवर्तन का बीज बाहर नहीं, भीतर बोना होगा। जब व्यक्ति सुधरेगा, तभी समाज बदलेगा। यही सच्ची और स्थायी जन चेतना की शुरूआत है।

कबीरदास आधुनिक युग के चिंतन में केवल ऐतिहासिक कवि नहीं, बल्कि समयातीत विचारक हैं। उनके विचार मानववाद, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, अस्तित्ववाद और नारीवाद सभी आधुनिक विचारधाराओं की जड़ों से जुड़े हैं। उनका दर्शन हमें बताता है कि सच्चा आध्यात्म केवल साधना नहीं, बल्कि सामाजिक जागरूकता और नैतिक क्रांति है।

हरि रूठे गुरू ठौर है, गुरू रूठे नहीं ठौर।

इस दोहे में कबीर गुरु के सर्वोच्च स्थान और उसके महत्व को स्पष्ट करते हैं। कबीर का मानना है कि यदि ईश्वर भी किसी कारण से मनुष्य से रूठ जाए तो गुरू उसे अपने ज्ञान, प्रेम और मार्गदर्शन से वापस ईश्वर के समीप पहुंचा सकता है। अर्थात् गुरू मनुष्य और परमात्मा के बीच एक सेतु का कार्य करता है।

परन्तु यदि स्वयं गुरू ही मनुष्य से रूठ जाए, तो उसके पास जाने का कोई स्थान नहीं रहता, क्योंकि गुरु के बिना भक्ति, ज्ञान और मुक्ति–

सब असंभव हो जाते हैं। गुरू ही वह प्रकाश है, जिसकी सहायता से साधक, अज्ञान, भ्रम और अंधकार से बाहर निकलता है।

इसलिए कबीर कहते हैं कि गुरु को नाराज़ नहीं करना चाहिए और न ही साधक को गुरू का अनादर या अविश्वास करना चाहिए। गुरु का स्नेह, मार्गदर्शन और ज्ञान ही सच्चे आध्यात्मिक जीवन की नींव है।

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।।

लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार।।

यह दोहा गुरु की महिमा और उसके उपकारों का अत्यधिक सुंदर और गहण चित्रण करता है। कबीर कहते है कि सच्चे गुरु की महिमा अनंत है– असीम, अज्ञेय और अनिर्वचनीय। सतगुरु वह है जो बिना किसी स्वार्थ के अपने शिष्य पर अत्यंत उपकार करता है। यह उपकार भौतिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक है– जो मनुष्य की आत्मा को जागृत करता है और उसे सत्य के मार्ग पर चलने की शक्ति प्रदान करता है।

कबीर बताते हैं कि सतगुरु शिष्य की आंतरिक दृष्टि खोल देता है। "लोचन अनंत उघाड़िया" का अर्थ है कि गुरू केवल आँखें ही नहीं खोलता, बल्कि वह ज्ञान–चक्षु खोलता है– अर्थात् वह दृष्टि जो संसार से परे, सत्य और परमात्मा के वास्तविक स्वरूप को देखने में सक्षम बनाती है। साधारण आँखें केवल दृश्य संसार की वस्तुओं को देखती हैं, पर गुरु आत्मदृष्टि देता है, जो ईश्वर और आत्मा के संबंध को समझने में सक्षम बनाती है।

"अनंत दिखावण्हार" का अर्थ है– गुरू वह है जो साधक को अनंत सत्य, अनंत ज्ञान और अनंत ईश्वर का अनुभव कराता है। यह दिखाना बाहरी दृश्य नहीं, बल्कि आंतरिक अनुभूति और आध्यात्मिक अनुभूति है। यही गुरू का सचमुच का वरदान है।

विश्लेष्णात्मक अर्थ–

गुरु मनुष्य को अज्ञान के अंधकार से निकालकर ज्ञान के प्रकाश में लाता है।

- परम सत्य और मुक्ति का मार्ग गुरु के बिना असंभव है।
- गुरु की महिमा इसलिए अनंत है क्योंकि वह मनुष्य को उसके वास्तविक स्वरूप से परिचित कराता है।
- गुरु के उपकार जीवन भर याद रखने योग्य हैं, क्योंकि वह जीवन का परिवर्तन ही नहीं बल्कि उत्थान भी करता है।

आधुनिक संदर्भ में–

आज के समय में ज्ञान का अर्थ केवल पुस्तकीय जानकारी समझ लिया जाता है, जबकि कबीर बताते हैं कि सच्चा ज्ञान वह है जो जीवन को बदल दे। इस संदर्भ में आज भी गुरू का महत्व उतना ही है, क्योंकि अपने भीतर की चेतना को जागृत करने वाला मार्गदर्शक जीवन में अत्यंत आवश्यक है।

कबीर का यह दोहा गुरु की सर्वोच्चता और उसकी कृपा को दर्शाता है। यदि गुरू का मार्गदर्शन प्राप्त हो जाए तो मनुष्य अनंत सत्य का दर्शन कर सकता है और जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझ सकता है। इसलिए सच्चे गुरु के चरणों में समर्पण ही आध्यात्मिक विकास की प्रथम सीढ़ी है।

सतगुरू की महिमा का वर्णन करना असंभव है क्योंकि उनका उपकार असीम है। सतगुरू अज्ञान के अंधकार में डूबे जीव को ज्ञान की ज्योति देते हैं– वे हमारी अंतर–दृष्टि के नेत्र खोलते हैं और परम सत्य का साक्षात्कार कराते हैं। बाहरी आँखें केवल संसार को देख सकती हैं, परंतु सतगुरू आत्मा की आँखें खोलकर वास्तविकता, ईश्वर और आत्म–स्वरूप

का दर्शन कराते हैं।यह दोहा भारतीय अध्यात्म के उस सिद्धांत को पुष्ट करता है कि–

ईश्वर तक पहुँचना गुरूकृपा के बिना संभव नहीं।

यह विचार वेदांत, अद्वैत, संतमत, नानकपंथ और कबीरपंथ में समान रूप से मिलता है।कबीर ने कहा भी है–

"गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।"

अर्थात् गुरु ईश्वर से पहले पूज्य है क्योंकि उन्हीं के माध्यम से ईश्वर का अनुभव होता है।मानव जीवन संघर्ष, भ्रम, पीड़ा और मानसिक अंधकार से भरा है। जिसमें गुरू का महत्व यह होता है कि–

- संशय को स्पष्टता में बदलते हैं।
- भय को विश्वास में परिवर्तित करते हैं।
- अंधे अहं को जाग्रत चेतना में रूपांतरित करते हैं।
- जीवन को दिशा और उद्देश्य देते हैं।

इस प्रकार गुरु केवल ज्ञान ही नहीं देते, बल्कि जीवन को पुनर्संयोजित करते हैं।

इसमें आध्याात्मिकता का अनुभव भी होता है जब कहा जाता है कि **"लोचन उघाड़िया"** अर्थात् यह तीसरे नेत्र या आत्मिक संवेदना की ओर संकेत है–

- यह ध्यान और साधना से जागृत होता है
- यह दृष्टि इंद्रिय–ज्ञान से परे होती है
- इसमें सत्य दिखता नहीं, बल्कि अनुभूत होता है

इसलिए सतगुरु को दिखावणहार कहा गया है क्योंकि वे अनुभूति का मार्ग खोलते हैं।

भक्ति युग के संत इसे ईश्वर प्राप्ति का मूल मानते हैं–

- रैदासः "गुरू बिन कौन बतावे बट"
- नानकः "बिन सतगुरू चरण कमल के, मन को नहि तृप्ति"
- दादूः "गुरू की महिमा अपरंपार"

अर्थात् गुरू उपकार की परिभाषा नहीं, अपितु अनुभव का विषय हैं।

इस दोहे के माध्यम से हम आध्यात्मिक जीवन में व्यावहारिक संकेत प्राप्त करते हैं–

- कृतज्ञता ही साधना का प्रथम चरण है
- विनम्रता से ही शिक्षाग्रहण संभव है
- गुरू के बिना मार्ग भटकने की संभावना अधिक है
- गुरू वह दीपक है जो अंधकार को नष्ट करता है

यह दोहा केवल स्तुति नहीं, बल्कि आध्यात्मिक सत्य का उद्घोष है– "सतगुरु वह दर्पण है जिसमें हम अपना वास्तविक रूप देखते हैं। वे बाहरी संसार नहीं, भीतर का ब्रह्माण्ड दिखाते हैं।"

इसलिए उनकी महिमा अनंत है और उनका उपकार अनिर्वचनीय है।

कथनी के सूरेघने, थोथे बाँधे तीर।

बिरह बान जिनके लगा, तिनके बिकल शरीर।।

कबीर का यह दोहा मानवीय संवेदना, आध्यात्मिक साधना और प्रेम– विशेषकर विरह– की तीव्रता को अत्यंत गहन रूपक में अभिव्यक्त करता

है। कबीर की भाषा सरल है, परंतु अनुभव अत्यंत सूक्ष्म और आंतरिक। यहाँ दो परतें हैं– प्रथम कथनी और वाणी की सतही सजावट और दूसरी विरह अर्थात् ईश्वर–प्रेम की गहरी व्यथा।

कथनी के 'सूरे' और 'घने'– आडंबरपूर्ण वाणी का संकेत

दोहे की प्रथम पंक्ति–

"कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर"

इस बात की ओर संकेत करती है कि केवल वाणी में मधुरता, शब्दों की सजावट, वाक्चातुर्य या दार्शनिक चर्चा से साधना की प्राप्ति नहीं होती।

'सूरे घने' का तात्पर्य है– बहुत सुंदर, चकाचौंध पैदा करने वाली, प्रभावशाली, परंतु सतही बातें।

'थोथे बाँधे तीर' का अर्थ है– ऐसा तीर जो खोखले बाँस या बिना सार वाली सामग्री से बना हो। अर्थात्:

- दिखने में आकर्षक
- किंतु चलाने पर प्रभावहीन और व्यर्थ

कबीर यहाँ यह स्थापित करते हैं कि केवल बोलने से, प्रवचन देने से या ज्ञान बघारने से आध्यात्मिक या मानवीय परिवर्तन संभव नहीं। वह इसे खोखली आध्यात्मिकता का रूप मानते हैं। प्रत्यक्ष संकेत है कि जो लोग बिना अनुभव के केवल भाषण देते हैं, उनके 'तीर'– उनकी वाणी– लक्ष्य तक कभी नहीं पहुँच पाती।

विरह– आत्मा की सच्ची साधना

दूसरी पंक्ति–

"बिरह बान जिनके लगा, तिनके बिकल शरीर"

यहाँ कबीर 'बिरह बान' को साधना, प्रेम और ईश्वर लाभ की उस भीतरी व्यथा का प्रतीक मानते हैं जो किसी भी शब्द चमत्कार से अधिक प्रभावी है।विरह वह मूल ऊर्जा है जो–

- साधक को भीतर से झकझोर देती है
- आत्मा में बेचैनी उत्पन्न करती है
- उसे परिवर्तन की राह पर ले जाती है
- उसे आत्मिक विनम्रता, करूणा और समर्पण में ढ़ाल देती है।

'बिकल शरीर' का आशय शारीरिक व्याकुलता नहीं, बल्कि आंतरिक बेचैनी है–वह बेचैनी जो ईश्वर, सत्य या प्रेम से दूरी की अनुभूति के कारण होती है।

कहने का भाव यह है कि–

- जिन व्यक्तियों पर विरह की चोट लगी है, वे भीतर से बदल जाते हैं।
- उनके शब्दों में नहीं, भावों में शक्ति आ जाती है।
- उनका अनुभव गहन होता है; बाहरी आडंबर पीछे छूट जाता है।

कथनी बनाम अनुभूति– कबीर का आध्यात्मिक दृष्टिकोण

कबीर अनुभव प्रधान साधना के कवि हैं। वे कहने पर नहीं, जीने पर विश्वास करते हैं।इस दोहे में उन्होंने स्पष्ट किया है–

- कथनी (कहना)आडंबर है
- अनुभूति (विरह)साधना है

जब तक साधक भीतर से नहीं पिघलता, तब तक उसका तन–मन–चेतना परिवर्तनशील नहीं होती।यहाँ विरह केवल रोमांटिक या लौकिक प्रेम नहीं, बल्कि–

- ईश्वर से मिलन की व्यथा
- सत्य की खोज
- आत्मा की पूर्णता प्राप्त करने का संघर्ष

कबीर विरह को एक आध्यात्मिक अग्नि मानते हैं जो मनुष्य को शुद्ध करती है।

सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्तर पर प्रासंगिकता

यह दोहा आज के समय में भी उतना ही प्रासंगिक है। आज धर्म, राजनीति, समाज, शिक्षा– हर स्थान पर कथनी अधिक और करनी कम दिखाई पड़ती है।

कबीर हमें बताते हैं कि–

- वास्तविक परिवर्तन भीतर की पीड़ा और लालसा से आता है
- केवल बोलना, लिखना या भाषण देना पर्याप्त नहीं है
- वास्तविक साधना अनुभव जन्य है

विरह का अर्थ यहाँ भावनात्मक या आध्यात्मिक संवेदना भी है:

- समाज की पीड़ा देखना
- मानवता के लिए संवेदना महसूस करना
- प्रकृति, परंपरा और सत्य से जुड़ने का प्रयास करना

ऐसा व्यक्ति भले ही अधिक न बोले, किंतु उसके अनुभव और करूणा की शक्ति स्वयं परिवर्तन लाते हैं।

दार्शनिकता–

यह दोहा हमे बताता है कि–

- आध्यात्मिक जीवन का मूल 'अनुभव' होता है, वाणी नहीं।
- जो केवल बोलते हैं, उनके शब्द बिना शक्ति के होते हैं।
- जो अनुभव करते हैं, उनके कम शब्द भी प्रभावकारी होते हैं।
- विरह– एक आध्यात्मिक बेचैनी– मनुष्य को ईश्वर मार्ग पर आगे बढ़ाती है।
- कबीर सतहीपन का विरोध करते हैं और गहन अनुभूति को प्राथमिकता देते हैं।

संदर्भ सूची

1. शर्मा, रामविलास, कबीरः दर्शन और समाज, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 2014।

2. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, वाराणसी, राजकमल प्रकाशन, 1957।

3. मिश्र, भगवत कुमार, कबीर का काव्य और दर्शन, प्रयागराजः हिंदी साहित्य संस्थान, 1998।

4. त्रिपाठी, जगदीश गुप्त, कबीर का काव्य और उसका युगबोध, लखनऊः विधार्थी ग्रंथालय, 2010।

5. उपाध्याय, शिवशंकर, कबीर और भारतीय समाज, नई दिल्लीः साहित्य भवन, 2015।

6. सिंह, विजयदेव नारायण, कबीरः एक पुनर्पाठ, दिल्लीः ज्ञानपीठ, 2018।

7. विरमानी, एस. (2008), भ्ंक.।दींक ;पिसउद्धए जेम झंइपत च्तवरमबजए प्दकपंण

8. पाठक, सूर्यकांत, कबीर और उनका युग, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, 2006।

9. ठाकुर, रविंद्रनाथ, धर्म और मानवता, कोलकाताः विश्वभारती, 1952।

10. मिश्रा, हेमचंद्र, कबीरः आध्यात्मिकता और आधुनिकता, भोपालः लोकभारती प्रकाशन, 2019।

11. सिंह, विजयदेव नारायण, कबीर और आधुनिक चिंतन, वाराणसीः भारतीय ज्ञानपीठ, 2016।

निष्कर्ष

शोध के प्रमुख निष्कर्षों का सार

कबीर भारतीय आध्यात्मिक परंपरा और सामाजिक इतिहास में एक ऐसे युग–नायक के रूप में उभरते हैं, जिन्होंने मनुष्य को उसकी मूल पहचान और उसकी वास्तविक गरिमा का बोध कराया। उनकी वाणी किसी संप्रदाय विशेष की सीमाओं में बंधी नहीं है, बल्कि वह संपूर्ण मानवता की साझा धरोहर बन चुकी है। कबीर ने अपने समय के जटिल और रूढ़िगत समाज को चुनौती देते हुए सत्य, समानता, प्रेम और आत्मज्ञान के मूल्यों को स्थापित किया। उनका काव्य जीवन के वास्तविक अनुभवों का सहज एवं सत्य दस्तावेज है, जिसमें समाज के सबसे कमजोर और हाशिए पर खड़े वर्गों के दर्द, समस्याएं, संघर्ष और उम्मीदें अभिव्यक्त होती हैं।

कबीर का संघर्ष केवल धार्मिक अंधविश्वासों और सामाजिक पाखंडों के विरूद्ध ही नहीं, बल्कि उन मानसिक रोगों के विरूद्ध भी था जो मनुष्य को मनुष्य से अलग कर देती हैं। उन्होंने जातिवाद, छुआछूत, ऊँच–नीच की भावना और भेदभावपूर्ण व्यवस्था को मानवता का सबसे बड़ा शत्रु बताया। उनकी दृष्टि में मनुष्य की श्रेष्ठता उसके जन्म या जाति में नहीं, बल्कि उसके कर्म, आचरण और नैतिकता में निहित है।

कबीर की वाणी स्पष्ट रूप से उस वैचारिक विद्रोह की घोषणा करती है जिसमें मानवता सर्वोपरि है। कबीर के लिए धर्म का मूल अर्थ प्रेम, सहिष्णुता और करूणा था, न कि विभाजन, हिंसा और संकीर्णता। उन्होंने मंदिर–मस्जिद, वेद–कुरान, हिंदू–मुस्लिम जैसी द्वैतवादी संरचनाओं को चुनौती दी और मनुष्यों के बीच एकता और समन्वय का संदेश दिया। उनके

शब्द आज भी हमें यह सोचने पर विवश करते हैं कि धार्मिक पहचान क्या वास्तव में मानव को श्रेष्ठ बनाती है, या उसकी मनुष्यता?

कबीर ने अपने समय में जो कुछ कहा, वह केवल उसी युग का संदेश नहीं, आज और आने वाले समय का मार्गदर्शन है। आधुनिक समाज में धर्म और राजनीति के नाम पर उत्पन्न होने वाली हिंसा, जातिगत विद्वेष, आर्थिक असमानता, छल–कपट, बाह्याचार और सांप्रदायिक संघर्ष यह प्रमाणित करते हैं कि मानव आज भी उन समस्याओं से पूरी तपह मुक्त नहीं हो पाया है जिनके विरूद्ध कबीर ने आवाज उठाई थी। इस संदर्भ में उनकी वाणी न केवल आलोचना करती है, बल्कि समाधान भी प्रस्तुत करती है। वे हमें भीतर झांकने, आत्मसाक्षात्कार करने और विवेकपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देते हैं।

"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत"

यह पंक्ति केवल व्यक्तिगत संघर्ष की नहीं, बल्कि पूरे समाज को जागरूक करने का संदेश है।

कबीर की वाणी में जो साहस, सरलता, स्पष्टता और निर्भीकता है, वही उनकी शक्ति है। उन्होंने कभी भी सत्ता, धर्माधिकारियों या परंपरागत वर्चस्व से समझौता नहीं किया। उनका जीवन और साहित्य दोनों प्रतिरोध, परिवर्तन और पुनर्निर्माण का प्रतीक है। वे मानते थे कि वास्तविक क्रांति तलवार से नहीं, बल्कि चेतना से आती है। इसलिए उनका काव्य मनुष्य के मन में एक गहरी हलचल पैदा करता है– वह सोचने, प्रश्न करने और परिवर्तन के लिए तैयार होने को प्रेरित करता है।

आज का मनुष्य भौतिक उन्नति में बहुत आगे बढ़ चुका है, लेकिन संवेदना, नैतिकता और आत्मिक चेतना के स्तर पर कहीं खोता हुआ दिखाई

देता है। विज्ञान ने मनुष्य को सुविधा दी, परंतु उसका मन अशांत और विभाजित होता गया। ऐसे समय में कबीर की वाणी यह याद दिलाती है कि मनुष्य की सबसे बड़ी पूँजी उसका हृदय है और सबसे बड़ी साधना मानवता है।

कबीर के विचार समाजवादी चेतना के भी जनक हैं। उन्होंने श्रमिकों, कारीगरों, जुलाहों, किसानों और उत्पीड़ितों को सम्मान दिया। यह दृष्टिकोण आज के लोकतांत्रिक और समतामूलक समाज की आधारशिला है। उनके अनुसार समाज तभी मजबूत होगा जब हर व्यक्ति समान अधिकार और सम्मान प्राप्त करेगा। उनकी वाणी में स्त्री की गरिमा और श्रम की महत्ता दोनों के पक्ष में स्पष्ट दृष्टि मिलती है। यह दृष्टिकोण समकालीन नारी विमर्श और अस्तित्ववादी चिंतन दोनों के साथ संवाद स्थापित करता है।

कबीर का प्रभाव केवल साहित्य तक सीमित नहीं है; वह कला, संगीत, लोकसंगीत, जनआंदोलनों और अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक मंचों तक विस्तारित है। उनकी साखियाँ आज भी लोक गायक घर–घर पहुँचाते हैं, उनकी वाणी पर आधारित नाटक, कविता, चित्रकला और संगीत रचनाएँ आज भी जीवंत है। आधुनिक विचारधाराएँ– जैसे मानववाद, धर्मनिरपेक्षता, अस्तित्ववाद, समाजवाद, लोकतंत्र, समतावाद– सभी किसी न किसी रूप में कबीर की प्रेरणा से समृद्ध और प्रभावित हैं।

कबीर का संदेश समय की सीमाओं से मुक्त है और सदैव प्रासंगिक रहेगा क्योंकि जब तक मनुष्य में घृणा और विभाजन होगा तब तक कबीर की आवशयकता इस संसार को पडेगी। जब तक संसार में प्रेम, शांति और सहअस्तित्व की खोज होती रहेगी, तब तक कबीर जीवित रहेंगे।कबीर की वाणी हमें जीवन का वह आदर्श देती है जो मानवता को बचाने की शक्ति

रखता है। वे हमें मनुष्य होने का अर्थ समझाते हैं और यही उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि है।

कबीर पर आधारित इस शोध–विमर्श से स्पष्ट होता है कि उनकी वाणी केवल धार्मिक या आध्यात्मिक अनुभवों का दस्तावेज़ नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन का एक प्रखर घोषणापत्र भी है। कबीर ने अपने समय की जड़, रूढ़ और विभाजनकारी संरचनाओं के विरूद्ध खड़े होकर मनुष्य और केवल मनुष्य को मूल्य की कसौटी पर रखा। जाति, वर्ग, धर्म, पाखंड और आडंबर के विरूद्ध उनका प्रतिरोध एक ऐसी सामाजिक चेतना का निर्माण करता है जो आज भी उतनी ही प्रासंगिक है।

कबीर भारतीय जीवन संस्कृति और विचार परंपरा के ऐसे युगपुरूष हैं जिनकी वाणी ने काल, समाज और धर्म की सीमाएं लाँघ दी हैं। उन्होंने उस युग में जब समाज रूढ़ियों, जातिवाद, अंधविश्वास और पाखंड में उलझा हुआ था, एक ऐसे सत्य की खोज की जो मानवता के सार्वभौमिक मूल्य पर आधारित था। उनका चिंतन केवल ईश्वर की खोज नहीं था, बल्कि मनुष्य और जीवन के अर्थ की खोज था।

उनकी वाणी सामाजिक असमानताओं के विरूद्ध एक साहसिक उद्घोष है, जो मनुष्य की आत्मस्वीकृति, श्रम की गरिमा और बराबरी के अधिकार को स्थापित करती है। कबीर की दृष्टि में धर्म का सार बाहरी अनुष्ठानों में नहीं, बल्कि आंतरिक मनुष्यता और नैतिकता में है; यह दृष्टि आधुनिक धर्मनिरपेक्षता, सहिष्णुता और संवाद की सबसे ठोस नींव प्रस्तुत करती है। वे समन्वयवादी भावधारा के पोषक हैं, जहां हिंदू और मुस्लिम परंपराओं का संश्लेषण एक साझा सांस्कृतिक रूप बनकर उभरा।

कबीर की चेतना आधुनिक समाजवादी विचारधारा के भी मूल बिंदुओं से मेल खाती है– समानता, श्रम–केन्द्रित मूल्य और शोषण के विरूद्ध प्रतिरोध। उनकी वाणी में निहित मानवीय दृष्टिकोण, अस्तित्ववादी स्वाधीनता और आत्मानुभूति की बातें आधुनिक दार्शनिक विमर्शों से संवाद करती हैं। स्त्री–चेतना के संदर्भ में भी कबीर स्त्री को समान सम्मान, आध्यात्मिक स्वायत्तता और मानवीय गरिमा प्रदान करते हुए एक प्रगतिशील स्वर रचते हैं।

साहित्य, कला, लोक परंपराओं और आधुनिक जन आंदोलनों में कबीर की उपस्थिति यह प्रमाणित करती है कि वे केवल ऐतिहासिक संत नहीं, बल्कि सदा जीवित रहने वाली सांस्कृतिक शक्ति हैं। वैश्विक मंचों पर भी उन्हें समान रूप से पढ़ा और गाया जा रहा है जो उनकी विचारधारा की विश्वव्यापी अपील को दर्शाता है।

कबीर का काव्य जनमानस की भाषा में लिखा गया सत्य का साक्ष्य है। उन्होंने निर्गुण भक्ति को आध्यात्मिक अनुभव के स्तर तक पहुँचाकर उसे सामाजिक चेतना से जोड़ा। उनकी भाषा सजीव, व्यावहारिक और लयात्मक है, जिसमें प्रतीक सीधे जीवन से लिए गए हैं। उनका कवि–स्वर समाज के भीतर व्याप्त विषमताओं, शोषण और अन्याय के विरूद्ध विद्रोह का स्वर है। वे केवल संत नहीं, बल्कि समाज सुधारक, विचारक और मानवतावादी दार्शनिक थे।

कबीर की वाणी में समानता, सहिष्णुता और प्रेम की भावना निहित है। उन्होंने जाति, धर्म, वर्ग और लिंग के भेदों को अस्वीकार करते हुए मनुष्य को केन्द्र में रखा। उनके शब्द–

"जाति न पूछो साधू की, पूछ लीजिए ज्ञान"

आज भी सामाजिक न्याय और मानवीय गरिमा के सबसे प्रासंगिक सूत्र हैं।

उनकी दृष्टि आधुनिक विचारधाराओं– समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, अस्तित्ववाद और मानवतावाद– के साथ स्वाभाविक रूप से जुड़ती है। वे आधुनिक मनुष्य को भीतर की शांति, नैतिकता और विवेक की राह दिखाते हैं। कबीर के चिंतन में जीवन की जटिलताओं का समाधान सादगी और आत्मबोध में निहित है।

साहित्य, कला, संगीत और जन आंदोलनों में कबीर की उपस्थिति आज भी गूँज रही है। उनके दोहे लोकगीतों से लेकर वैश्विक मंचों तक गाए जा रहे हैं। समकालीन सृजन में वे केवल एक ऐतिहासिक संत नहीं, बल्कि 'जीवित विचार' के रूप में उपस्थित हैं। उनका संदेश किसी एक काल या संस्कृति तक सीमित नहीं, बल्कि पूरी मानवता के लिए है।

आज के विभाजित और भौतिकवादी युग में कबीर की वाणी हमें भीतर झाँकने और आत्मसत्य से जुड़ने का आह्वान करती है। वे सिखाते हैं कि ईश्वर बाहर नहीं, मनुष्य के भीतर है; और मुक्ति बाहरी अनुष्ठानों से नहीं, बल्कि आत्मज्ञान और प्रेम से संभव है।

इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि कबीर केवल अतीत के कवि नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के पथ–प्रदर्शक भी हैं। उनके विचार आज भी यह संदेश देते हैं कि यदि समाज को विभाजन, हिंसा, अन्याय और असमानता से मुक्त करना है तो मनुष्य को अपनी सोच, व्यवहार और जीवनदृष्टि में परिवर्तन लाना होगा। वह परिवर्तन बाहरी नहीं, भीतर से शुरू होगा– यह उनकी वाणी की मूल साधना है।

इसलिए उनका निष्कर्ष किसी युग के अंत का नहीं, बल्कि एक नए युग के प्रारंभ का आह्वान है। वे हमें सचेत करते हैं कि मानवता का भविष्य हथियारों में नहीं, प्रेम में है; पहचान जाति या धर्म में नहीं, मनुष्यता में है; और सच्चा धर्म मंदिरों या मस्जिदों में नहीं, इंसान के हृदय में वास करता है।

समग्रतः कबीर की वाणी समय की सीमा को पार करती हुई समकालीन मानवता के लिए मूल्यों का एक सार्वकालिक घोष बन जाती है। उनकी शिक्षाएं आधुनिक राजनीति, समाज, चिंतन और सांस्कृतिक विकास के लिए आज भी मार्गदर्शक हैं। यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कबीर का दर्शन न केवल अतीत को समझने में सहायता करता है बल्कि भविष्य के मनुष्य और समाज की दिशा भी तय करने की क्षमता रखता है।

आगे के अनुसंधान की संभावनाएँ

कबीर पर अब तक व्यापक अध्ययन हुए हैं फिर भी उनके बहुआयामी चिंतन और सांस्कृतिक प्रभाव को देखते हुए भविष्य में अनुसंधान की कई नई दिशाएं खुलती हैं। सबसे पहले उनकी वाणी में निहित मानवतावादी दर्शन को आधुनिक वैश्विक परिप्रेक्ष्य में समझने की आवश्यकता है। आज के विश्व में बढ़ती असहिष्णुता, धार्मिक धुव्रीकरण और सामाजिक विभाजन के संदर्भ में कबीर के विचारों की उपयोगिता पर तुलनात्मक शोध किया जा सकता है।

दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है– कबीर और आधुनिक दार्शनिक प्रवृत्तियों जैसे अस्तित्ववाद, उत्तर आधुनिकता, विमर्श सिद्धांत और क्रिटिकल ह्यूमनिज़्म के बीच संबंधों का विश्लेषण। यद्यपि कुछ विद्वानों ने इस दिशा में

कार्य किया है, पर अभी भी गहन और व्यवस्थित अध्ययन की संभावनाएं बनी हुई हैं।

तीसरा, कबीर की भाषा, प्रतीक और रूपकों पर सांस्कृतिक–मानवशास्त्रीय दृष्टि से अनुसंधान किया जा सकता है। उनके प्रतीक लोकजीवन, श्रम संस्कृति, नदी–संस्कृति और ग्राम्य अनुभवों से जुड़े हैं। इनका विश्लेषण क्षेत्रीय सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ जोड़कर करने से उनके काव्य का नया आयाम उजागर हो सकता है।

चौथा, स्त्री–विमर्श में कबीर की भूमिका एक उभरता हुआ विषय है। कबीर ने सामाजिक अन्याय और पितृसत्ता के कई रूपों को चुनौती दी है, परंतु यह अध्ययन अपेक्षाकृत कम हुआ है कि उनकी वाणी स्त्री–स्वतंत्रता, श्रम और अस्तित्व के प्रश्नों से कैसे जुड़ती है।

पाँचवाँ, आधुनिक मीडिया– विशेषकर डिजिटल प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया, फ्यूज़न म्यूज़िक, डॉक्यूमेंट्री और वैश्विक संगीत उत्सवों– में कबीर की पुनर्व्याख्या पर शोध किया जा सकता है। यह अध्ययन बताएगा कि किस प्रकार एक लोककवि का संदेश डिजिटल युग में नई पीढ़ी तक पहुँच रहा है और इसमें कौन से सांस्कृतिक परिवर्तन उभर रहे हैं।

छठा, कबीर और अंतरराष्ट्रीय आध्यात्मिक परंपराओं – सूफीवाद, ज़ेन बौद्ध धर्म, ताओवाद और मिस्टिसिज़्म– के बीच तुलनात्मक अध्ययन भी अत्यंत उपयोगी हो सकता है। इससे उनकी वाणी का वैश्विक दार्शनिक महत्व और स्पष्ट होगा।

सातवाँ, कबीर की निर्गुण भक्ति को सामाजिक आंदोलन के दृष्टिकोण से अध्ययन करने की आवश्यकता है। उनके विचार भारत के किसान आंदोलनों, श्रमिक आंदोलनो, दलित साहित्य, भक्ति आंदोलन के

पुर्नपाठ और समता–आधारित जन संघर्षों के साथ कैसे संबद्ध हैं, इस पर नए शोध खोले जा सकते हैं।

अंतः उनके ग्रंथ बीजक की पांडुलिपियों पाठभेदों और प्रामाणिकता पर फिलोलॉजिकल अध्ययन भी समय की आवश्यकता है जिससे उनके मूल स्वर और विचार अधिक सटीक रूप में सामने आ सकते हैं।

इन सभी दिशाओं से स्पष्ट है कि कबीर का अध्ययन अब भी पूर्ण नहीं हुआ है। उनके बहुस्तरीय व्यक्तित्व, काव्य और दर्शन में भविष्य के शोद्धार्थियों के लिए विपुल संभावनाएं विद्यमान हैं। उनका चिंतन जितना अतीत का प्रतिनिधि है, उतना ही भविष्य को आलोकित करने की क्षमता भी रखता है।

इस प्रकार कबीर की वाणी केवल हिंदी साहित्य की धरोहर नहीं, बल्कि समूची मानव सभ्यता का नैतिक प्रकाशस्तंभ है। उनकी वाणी युगों–युगों तक मानवता को दिशा देती रहेगी।कबीर का यही प्रेम और सत्य का दर्शन आज भी संसार की आत्मा को प्रकाशित कर रहा है – और यही उनकी सार्वकालिक प्रांसगिकता का साक्ष्य है।

कबीर की चिंतन भारतीय समाज की सामूहिक चेतना में वह शक्तिशाली हस्तक्षेप है जिसने मानव जीवन की जटिलताओं को सरल, स्पष्ट और मूलभूत रूप में समझने का मार्ग प्रस्तुत किया। उनका जीवन और साहित्य दोनों ही संकटग्रस्त समाज के लिए एक प्रकाश–स्तंभ की भांति कार्य करते हैं। वे ऐसे युग में जन्मे जब हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष, जातिभेद, धार्मिक पाखंड, कर्मकांड की जटिलता, सामाजिक असमानता और वर्गीय शोषण चरम पर था; परंतु कबीर ने इन परिस्थितियों के सामने न झुककर एक सशक्त आत्मा की आवाज उठाई। उन्होंने मनुष्य को जागने,

सोचने, प्रश्न करने और आत्म–विकास की दिशा में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित किया। इसलिए कबीर केवल एक कवि या संत नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत, मानव चेतना के निर्माता और सत्य के साधक कहलाते हैं।

कबीर की दृष्टि में मनुष्य का वास्तविक मूल्य उसकी बाहरी पहचान या परंपरा नहीं, बल्कि उसकी आंतरिक पवित्रता और संवेदनशीलता है। वे कहते हैं कि मनुष्य मंदिरों, मस्जिदों, पूजा–पाठ, उपवास और बाहरी दिखावे से ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता; वह तभी ईश्वर से मिल सकता है ज बवह अपने भीतर के भ्रम, अंहकार, लोभ, ईर्ष्या और घृणा को त्याग दे। उनका संदेश भीतर की यात्रा का संदेश है– एक ऐसी यात्रा जो मनुष्य को स्वयं से मिलाती है और सत्य तक पहुँचाती है।

"साँई इतना दीजिए, जामे कुटुम समाय।

मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय।"

यह दोहा केवल आध्यात्मिक संतुलन का नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक न्याय का दर्शन भी प्रस्तुत करता है। इसमें वितरण की समानता और परस्पर निर्भरता का विचार छिपा है, जो आधुनिक सामाजिक लोकतंत्र की आधारशिला माना जाता है।

कबीर की वाणी मानवीय संबंधों के पुनर्निर्माण की भी वाणी है। उन्होंने प्रेम को जीवन का मूल तत्व माना– प्रेम जो विभाजन नहीं, बल्कि एकता पैदा करे; प्रेम जो दिखावे से मुक्त और सच्चे अनुभव पर आधारित हो। उनके अनुसार आज का मनुष्य बाहरी उपलब्धियों के पीछे भागते–भागते अपने भीतर की शांति खो चुका है। आधुनिक युग की प्रतिस्पर्धा, तनाव, हिंसा, राजनीतिक स्वार्थ, धार्मिक उन्माद और सामाजिक

प्रदूषण ने मनुष्य को भीतर से खोखला बना दिया है। ऐसे समय में कबीर का संदेश गूँजता है–

"जहाँ प्रेम वहाँ राम है, जहाँ लोभ वहाँ पाप।"

कबीर की वाणी जितनी अध्यात्म की है, उतनी ही क्रांति की भी है। उन्होंने समाज की जड़ता को तोड़ने और नई व्यवस्था स्थापित करने की चेतना जगाई। समाज में व्याप्त असमानता को उन्होंने सिरे से नकारा। यह दृष्टि आधुनिक समाजवादी आंदोलन, दलित चेतना और मानवाधिकार के विचारों से गहरे रूप से मेल खाती है। उनकी वाणी श्रम का सम्मान करती है– वे स्वयं जुलाहे थे और उनका जीवन प्रमाणित करता है कि श्रम ही मनुष्य को गरिमा प्रदान करता है। यह विचार आधुनिक श्रम आधारित अर्थतंत्र और समाजवादी सिद्धांतों का आधार है।

आज भी विश्व में धार्मिक संघर्ष, आतंकवाद, पहचान की राजनीति, जातीय हिंसा, सांप्रदायिक तनाव, आर्थिक असमानता और सांस्कृतिक विभाजन लगातार बढ़ रहे हैं। मनुष्य वैज्ञानिक विकास और तकनीकी सुविधा के शिखर पर तो पहुँच चुका है, परंतु नैतिक और भावनात्मक स्तर पर वह पहले से अधिक टूट चुका है। ऐसे संकटग्रस्त समय में कबीर के विचार किसी वैकल्पिक समाधान की तरह उभरते हैं। वे हमें बताते हैं कि विश्व के वास्तविक परिवर्तन का मार्ग 'बाहरी शक्ति' या राजनीतिक व्यवस्था' से नहीं, बल्कि 'अंतरचेतना' और 'मानवीय एकता' से होकर जाता है।

उनकी वाणी मानवता के वैश्विक भविष्य के लिए भी एक मजबूत आधार प्रस्तुत करती है। आज जब पूरी दुनिया वैश्वीकरण के नाम पर आर्थिक रूप से जुड़ रही है, किंतु भावनात्मक और सामाजिक रूप से विखंडित हो रही है, तब कबीर का समन्वयवाद– जो धर्म, संस्कृति, भाषा

और मानवता को एक सूत्र में बाँधता है– अत्यधिक आवश्यक हो जाता है। वे कहते हैं कि मनुष्य यदि अपने हृदय को बदल सके, तो समाज, राष्ट्र और संसार सब बदल जाएगा।

कबीर का चिंतन स्त्री की गरिमा और अस्तित्व को भी नई पहचान देता है। उन्होंने स्त्री को केवल परिवार या माया के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे समाज की निर्माता शक्ति के रूप में स्वीकारा। आज जब नारी–सशक्तिकरण और लैंगिग समानता वैश्विक विमर्श का प्रमुख विषय हैं, तब कबीर की दृष्टि उनकी प्रासंगिकता को और गहरा करती है।

उनके विचार अस्तित्ववादी के भी समानांतर चलते हैं। जीवन के मूल प्रश्नों– मैं कौन हूँ, जीवन का उद्देश्य क्या है, सत्य क्या है, मृत्यु का अर्थ क्या है– इन सब के उत्तर उनकी वाणी गहराई से खोजती है। अस्तित्ववाद जीवन की प्रमाणिकता की बात करता है और कबीर भी यही कहते हैं कि मनुष्य को अपने भीतर की सच्चाई को पहचानना चाहिए और नकली बाहरी आवरणों का त्याग करना चाहिए।

कबीर की वाणी किसी एक काल, संस्कृति, राष्ट्र या धर्म की संपत्ति नहीं, बल्कि संपूर्ण मानव सभ्यता की अमूल्य धरोहर है। वे समय से परे, स्थान से परे और सत्ता से परे खड़े होकर सत्य की घोषणा करते हैं। सत्य, प्रेम, मानवता और समानता– ये चार स्तंभ उनके संपूर्ण चिंतन की आधारशिला हैं।

कबीर आज भी उतने ही जीवित और आवश्यक हैं जितने 600 वर्ष पहले थे। जब तक संसार में अन्याय होगा, कबीर की आवाज उठेगी; जब तक मनुष्य विभाजित होगा, कबीर एकता का संदेश देंगे; जब तक मनुष्य भीतर से जागृत नहीं होगा, तब तक कबीर की वाणी चेतावनी बनकर

सामने आएगी। वे हमें सिखाते हैं कि परिवर्तन की शुरूआत दूसरों से नहीं, बल्कि अपने भीतर से करनी होती है। यही कारण है कि उनकी वाणी अंत नहीं, बल्कि एक निरंतर आरंभ है– एक ऐसी धारा जो मानव सभ्यता को आगे बढ़ाती रहेगी।

अंततः कबीर की सीख हमें यह बताती है कि मनुष्य का भविष्य प्रेम, करूणा, संवाद, विवेक, समानता और मानवता में है। यदि संसार इन मूल्यों को अपना सके तो हिंसा, विभाजन, घृणा और संघर्ष की जगह शांति, सद्भाव और सहअस्तित्व ले सकते हैं। यही कबीर का सार्वकालिक, सार्वभौमिक और सार्वमानवीय संदेश है– एक ऐसा संदेश जो कल भी सत्य था, आज भी सत्य है और आने वाले समय में भी मार्गदर्शी बना रहेगा।

उपसंहार

कबीर भारतीय साहित्य और अध्यात्म के इतिहास में एक ऐसे विराट हस्ताक्षर के रूप में उभरते हैं, जिनकी वाणी केवल काव्य अभिव्यक्ति भर नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और आध्यात्मिक मुक्ति की क्रांतिकारी पुकार है। उनके काव्य में जीवन के समस्त आयामों का समन्वय मिलता है– मनुष्य, समाज, धर्म, ईश्वर, प्रेम, भक्ति, नैतिकता और समता की स्थापना का अविराम संघर्ष। यह शोध–कर्म कबीर के चिंतन में निहित उन तत्वों की खोज का प्रयास रहा है। जो आधुनिक समय में भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने पंद्रहवीं सदी में थे।

कबीर की वाणी मानवता की उस अनंत ज्योति की तरह है जो समय, परिस्थितियों और सत्ता संरचनाओं की दीवारों से परे जाकर निरंतर प्रकाश फैलाती रही है। वे केवल मध्यकालीन संत–कवि नहीं, बल्कि युगों को जोड़ने वाले वैचारिक सेतु, मनुष्य की स्वतंत्र चेतना के प्रवक्ता और सामाजिक परिवर्तन के अग्रदूत हैं। उनकी दृष्टि मनुष्य को जाति, धर्म, पंथ, ऊँच–नीच और आडंबर के विभाजनों से मुक्त कर उसके मूल स्वरूप– एक संवेदनशील, समान और स्वतंत्र अस्तित्व– की ओर लौटाती है।

आज का समाज, जहाँ हिंसा, असहिष्णुता, राजनीतिक ध्रुवीकरण, आर्थिक असमानता और सांस्कृतिक विघटन तीव्र रूप से उपस्थित हैं, वहां कबीर का संदेश पहले से अधिक सार्थक और जरूरी हो उठता है। प्रेम, करूणा, श्रम का सम्मान, सत्य की निर्भीकता और मानवीय एकता जैसे मूल्य केवल उनके काव्य के विषय नहीं, बल्कि जीवन के व्यावहारिक सिद्धांत हैं।

कबीर हमें यह सिखाते हैं कि परिवर्तन किसी व्यवस्था या सत्ता के आदेश से नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर से आरंभ होता है–"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" उनकी दृष्टि हर युग में यह चुनौती देती है कि हम बाहरी विभाजनों को छोड़कर आत्म–चेतना, विवेक और मानवीय सम्मान की आधारशिला पर समाज का पुनर्निर्माण करें।

कबीर का मूल लक्ष्य मनुष्य को उसकी आंतरिक जड़ता, रूढ़ियों और अंधानुकरण की बेड़ियों से मुक्त करना था। उन्होंने मनुष्य को स्वयं की खोज करने, अपने भीतर ईश्वर को पहचानने और बिना मध्यस्थों के, बिना जटिलताओं के जीवन जीने की शिक्षा दी। उनके कथन **"मोको कहाँ ढूँढे रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में"** केवल आध्यात्मिक सत्य ही नहीं, बल्कि मनुष्य की आंतरिक संभावनाओं और आत्मविश्वास की उद्घोषणा भी है। इस शोध में स्पष्ट रूप से उभरकर आया है कि कबीर का दर्शन बाहरी आडंबरों से मुक्त होकर वास्तविक जीवन की सादगी को अपनाने का आग्रह करता है।

कबीर का काव्य मूल रूप से एक ऐसी सामाजिक और धार्मिक क्रांति का दस्तावेज है जिसमें उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों समाजों की रूढ़िवादिता और पाखंड पर कठोर प्रहार किए। उनके दोहे और साखियाँ केवल साहित्यिक संरचनाएँ नहीं थीं, बल्कि जन–जन के मानस को झकझोरने वाली विचारधाराएं थीं। उनके संदेश का मूल केन्द्र मानव–धर्म है–जहां जाति, वर्ग, पंथ, शक्ति, पद या विशेष अधिकार कोई महत्व नहीं रखते। **"जाति न पूछो साधू की"** इस पंक्ति में निहित गहन चेतना के आधार पर शोध में यह निष्कर्ष सामने आया है कि कबीर का दृष्टिकोण समकालीन सामाजिक संरचनाओं के पुनर्निर्माण की दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है। आज जब समाज अनेक स्तरों पर विभाजित है– जाति, धर्म, क्षेत्र, राजनीति और आर्थिक विषमता की खाई गहराती जा रही है– कबीर की

वाणी एक सेतु की तरह सामने आती है, जो मनुष्यता को केन्द्र में रखकर एकता की दिशा में अग्रसर करती है।

कबीर की भाषा और शैली ने भी इस शोध में विशेष महत्व प्राप्त किया है। अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली और फारसी शब्दों से निर्मित कबीर की 'सधुक्कड़ी' भाषा ने यह सिद्ध किया कि साहित्य की शक्ति जनसाधारण की भाषा में ही निहित रहती है। उनकी वाणी में जो तीक्ष्णता, व्यंग्य और निर्भीकता है, वह उन्हें अन्य भक्त कवियों से भिन्न और विशिष्ट बनाती है कि वह पढ़ी भी जाती है और गाई भी जाती है, सुनी भी जाती है और समझी भी जाती है।

शोध में यह तथ्य स्पष्ट हुआ है कि कबीर का भक्ति–पथ निराकार, निर्गुण और अनन्य है, जिसका उद्देश्य बाह्य ढांचे या अनुष्ठानों की बजाय आंतरिक शुचिता, प्रेम और सत्य की साधना है। कबीर के अनुसार सच्ची भक्ति वही है जो मनुष्य को मानव बनाती है– जो मन को निर्मल करती है और अंहकार को समाप्त। उनका संदेश आत्मज्ञान पर आधारित है, जिसमें धर्म कोई संस्था नहीं, बल्कि अनुभव का उत्स है।

आज के वैश्विक परिदृश्य में, जहाँ आध्यात्मिकता बाजार में परिवर्तित हो रही है, जहाँ धर्म सत्ता का उपकरण बन रहा है और जहाँ मनुष्य मनुष्य से ही दूर होता जा रहा है– कबीर का दर्शन मानवीय संबंधों, करूणा और समानता की पुनर्स्थापना का आधार प्रदान करता है। इसलिए कबीर का काव्य केवल ऐतिहासिक साहित्य नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए एक मार्गदर्शक विचार–धरोहर है।

इसी अर्थ में कबीर न तो इतिहास के पात्र हैं न किसी संप्रदाय के प्रतीक; वे मनुष्य की आत्मा की आवाज हैं, जो आज भी उतनी ही स्पष्ट

सुनाई देती है जितनी अपने समय में थी। उनके विचारों का पुनर्पाठ, पुनर्विचार और व्यवहार में रूपांतरण ही आधुनिक समाज के लिए सच्ची श्रद्धांजलि और भविष्य के लिए सबसे विश्वसनीय मार्गदर्शन हो सकता है।

कबीर भारतीय समाज और आध्यात्मिक परंपरा के इतिहास में एक अद्वितीय व्यक्तित्व के रूप में स्थापित हैं, जिनका काव्य केवल शब्दों का संयोजन नहीं, बल्कि जीवन का प्रमाणिक दस्तावेज़ है। वे ऐसे संत हैं जिनकी दृष्टि धार्मिक रूढ़ियों, सामंती संरचनाओं और सामाजिक अन्याय के विरूद्ध एक विद्रोही स्वर के रूप में उभरती है। उनके विचारों की नींव मानव की मूल गरिमा, समानता, प्रेम, सत्य और आंतरिक शुचिता पर आधारित है। कबीर ने अपने समय में व्याप्त जाति–व्यवस्था, छुआछूत, बाह्याचार, पाखंड, धार्मिक संकीर्णता और कर्मकांडपूर्ण व्यवस्था को खुलकर चुनौती दी। उन्होंने मनुष्य की पहचान उसके जन्म से नहीं, बल्कि उसके कर्म, आचरण और नैतिकता से करने की बात कही। इसलिए कबीर का काव्य केवल साहित्य नहीं, बल्कि एक सामाजिक क्रांति का सूत्रधार है।

कबीर की वाणी का केंद्र मनुष्य है– एक ऐसा मनुष्य जो विभाजन, घृणा और सामंती विचारों से ऊपर उठकर स्वयं को पहचान सके। उनके अनुसार ईश्वर मंदिर, मस्जिद, तीर्थ या ग्रंथों में बंद नहीं, बल्कि हर जीव के भीतर निवास करता है। जब मनुष्य भीतर की खोज करता है, तभी वह सत्य तक पहुँच सकता है। यही कारण है कि कबीर ने बाहरी भक्ति की जगह नैतिकता, करूणा और आत्मबोध को आध्यात्मिकता का मूल माना। उनका यह दृष्टिकोण आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृतियाँ, धार्मिक उन्माद, जातिगत और सांस्कृतिक हिंसा जब मानव जीवन को बाँट रही हैं, तब कबीर की वाणी आत्मचेतना और समरसता की प्रेरणा देती है।

कबीर ने एक ऐसे समाज की कल्पना की, जहाँ श्रम और श्रमिक का सम्मान हो, मनुष्य को मनुष्य समझा जाए और प्रेम तथा सहिष्णुता मानव–व्यवहार का आधार बनें। उन्होंने वर्ग–भेद, धार्मिक संघर्ष और सामाजिक अन्याय को मानव पतन का कारण माना। उनका यह विचार समाजवादी व लोकतांत्रिक मूल्यों का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। उनके दोहे–

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान"

"एक ही माटी के सब भांडे, एकै सीर परनार"

मानव समानता का वह स्वर है जो आज भी सभी सामाजिक विमर्शों की धुरी बने हुए हैं।कबीर का साहित्य अपने समय की सीमाओं को लांघकर सार्वकालिक और वैश्विक स्वर प्राप्त करता है। उन्होंने धर्म को मानवता के विकास का साधन माना, न कि विभाजन का उपकरण। इसलिए उनके चिंतन में हिंदू–मुस्लिम, मंदिर–मस्जिद, वेद–कुरान जैसी परस्पर विरोधी धारणाएँ समन्वयवाद के सूत्र में बंध जाती हैं। वे कहते हैं–

"हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या।

रहें आज़ाद या जंजीर में, हमें कुछ परवाह नहीं।"

इस व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण ने उन्हें वैश्विक मानवता का कवि बना दिया।समकालीन संदर्भों में भी कबीर गहरी सार्थकता रखते हैं। आज जब समाज धर्म और राजनीति के नाम पर विभाजित हो रहा है, विज्ञान और तकनीक के विकास के बावजूद मनुष्य संवेदनहीन होता जा रहा है। तब कबीर की वाणी मनुष्य को भीतर झाँकने, विवेक के प्रयोग और आत्म–शोध के लिए प्रेरित करती है। वे हमें सिखाते हैं कि वास्तविक

परिवर्तन बाहरी क्रांति से पहले व्यक्ति की चेतना में होना चाहिए। उनके शब्द सामाजिक यथार्थ का आईना हैं–

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।"

यह दोहा केवल पुस्तकीय ज्ञान की आलोचना नहीं, बल्कि अनुभव और व्यवहारिकता को प्राथमिकता देने की मांग है।कबीर न केवल सामाजिक परिवर्तन के कवि हैं, बल्कि मानवीय अस्तित्व की जिज्ञासा और जीवन के मूल प्रश्नों के साधक भी हैं। उनके चिंतन में अस्तित्ववादी संवेदनाएँ स्पष्ट रूप से मिलती हैं– मनुष्य कौन है, जीवन का उद्देश्य क्या है, सत्य कहाँ है, मृत्यु के बाद क्या है– ये सभी प्रश्न उनकी वाणी में निरंतर उठते हैं। इसलिए कबीर आधुनिक दार्शनिक आंदोलनों, विशेषकर अस्तित्ववाद और मानवतावादी विचारधाराओं के साथ भी संवाद स्थापित करते हैं।

स्त्री के प्रश्न पर भी कबीर का दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। उन्होंने स्त्री को पाप और मोह की जननी समझने वाले दृष्टिकोण को खारिज किया और उसके श्रम, संवेदना और अस्तित्व की मर्यादा को महत्व दिया। जहाँ उनके समकालीन साहित्य में स्त्री अक्सर उपेक्षित है, वहीं कबीर के काव्य में वह समाज की संरचना का आवश्यक आधार बनकर उभरती है।

यह स्वीकार करना उचित होगा कि कबीर की वाणी आज भी हमसे प्रश्न करती है– क्या हम मनुष्य को मनुष्य की तरह देख पा रहे हैं? क्या हमारी प्रगति केवल तकनीकी है या नैतिक भी? क्या हम धार्मिक पहचान के पीछे मानवता को खोते जा रहे हैं? उनका संदेश हमें कट्टरता की बजाय संवाद, प्रतियोगिता की जगह सहयोग और शक्ति की बजाय संवेदना चुनने की प्रेरणा देता है। इस दृष्टि से कबीर भविष्य का मार्ग भी सुझाते हैं,

क्योंकि उनका लक्ष्य एक ऐसी दुनिया बनाना था जहाँ न्याय, समानता, स्वतंत्रता और प्रेम जीवित रहें।

कबीर की वाणी से स्पष्ट होता है कि वह अपने समय से आगे का सोचते थे। आधुनिक समय में भी उनकी वाणी उतनी ही कारगर दिखाई पड़ती है जितनी की उस समय थी। उस समय में भी लोग उनको ठीक प्रकार से पहचान नहीं सके थे और यही आज के समय में भी है। जिस प्रकार के उनके दोहे लोगों की जुबान पर होते हैं किंतु उनको वे अपने जीवन में उतारते ही नहीं हैं, उनकी गहराई को नहीं समझ पाते हैं। यह भी सत्य है कि समाज उस ओर अग्रसर है जहां कबीर के विचार पहुंचाना चाहते हैं और भविष्य में वे अपना स्थान बना लेंगे।

इस शोध के निष्कर्ष का सार यही है कि कबीर की वाणी समकालीन समाज में भी उतनी ही आवश्यक है जितनी उनके युग में थी। उनका व्यक्तित्व और काव्य जीवन, समाज और अध्यात्म के संतुलन का जीवंत उदाहरण है। कबीर ने मनुष्य को अपनी सोच बदलने, अपने भीतर झाँकने, सत्य की पहचान करने और मनुष्यता को सर्वोपरि मानने का संदेश दिया– और यही संदेश आज के समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है।इस प्रकार कहा जा सकता है कि कबीर का संदेश समय की सीमाओं से परे, युगों और संस्कृतियों को छूने वाला वह सार्वकालिक प्रकाश है, जो आज भी हमारी सामूहिक चेतना को दिशा देने में सक्षम है।

कबीर की वाणी भी समय की सीमाओं से परे एक सार्वकालिक तीर्थ है। वे इतिहास के संत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के पथप्रदर्शक हैं। यदि समाज उनकी सीख को व्यवहार में उतार सके, तो मानव जीवन अधिक सुंदर, सुरक्षित और सहअस्तित्वपूर्ण बन सकता है। उनकी वाणी आज भी हमें यह स्मरण कराती है कि–

"मन के हारे हार है, मन के जीते जीत"

क्योंकि अंततः मनुष्य का वास्तविक संघर्ष बाहर की दुनिया से अधिक अपने भीतर से होता है। इसलिए कबीर का उपसंहार केवल एक विचार का अंत नहीं, बल्कि एक नए सामाजिक और आध्यात्मिक विमर्श का आरंभ है।

अतः यह उपसंहार इस तथ्य की पुष्टि करता है कि कबीर केवल इतिहास के कवि नहीं हैं बल्कि आज के और आने वाले समय के भी कवि हैं– जो चेतना को जगाते हैं, मनुष्य को मनुष्य होने की ओर लौटाते हैं और समाज को न्याय, समानता, प्रेम और सहअस्तित्व की दिशा में आगे बढ़ाते हैं।

संदर्भ सूची

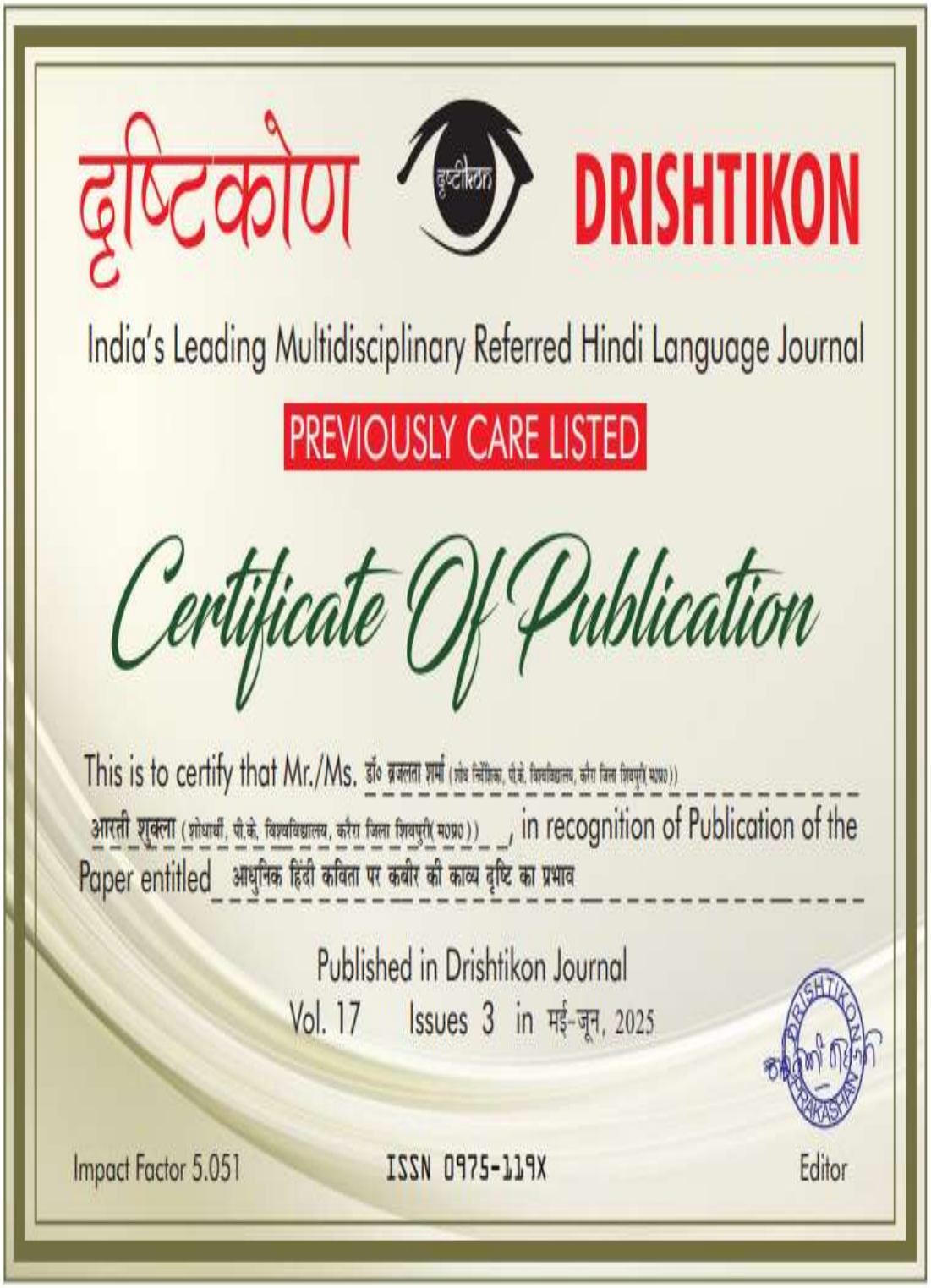
1. कबीर और आधुनिकता, हिंदी अकादमी, दिल्ली।
2. कबीर का दर्शन और सामाजिक चेतना, भारतीय साहित्य शोध पत्रिका।
3. कबीर की साखीः समाज और संस्कृति, सुशील कुमार, भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली, 2005।
4. कबीर का काव्य और सामाजिक चेतना, श्यामसुन्दर मिश्र, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2012।
5. कबीरः समाज और समन्वय, डॉ विजय केशव, वाणी प्रकाशन, 2016।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, *कबीर*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1957।
2. शुक्ल, रामचन्द्र, *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. नामवर सिंह, *कबीर के प्रति*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली,1982
4. बच्चन सिंह, *कबीर और उनका युग*, भारतीय ज्ञानपीठ, प्रयागए 1971
5. रमेशचन्द्र शाह, *निर्गुण काव्य परम्परा और कबीर*, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1985
6. मुरलीधर शरण, *कबीर दर्शन*, मोतीलाल बनारसी, दिल्ली, 1978
7. रघुवंश, *कबीर का सामाजिक स्वरूप*, साहित्य भवन, वाराणसी, 1975
8. अमृतलाल नागर, *सन्त कबीर*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1962
9. धर्मवीर भारती, *कबीर का काव्य और दर्शन*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972
10. ललिता गुप्ता, *कबीर के दार्शनिक विचार*, शांति प्रकाशन, मुंबई, 2013
11. विजय कुमार, *धर्म और मानवता : कबीर की दृष्टि*, साहित्य संदर्भ, जयपुरए 2017
12. रामविलास शर्मा, *कबीर : दर्शन और समाज*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014
13. भगवत कुमार मिश्र, *कबीर का काव्य और दर्शन*, हिन्दी साहित्य संस्थान, प्रयागराज, 1998
14. जगदीश गुप्त त्रिपाठी, *कबीर का काव्य और उसका युगबोध*, विद्यार्थी ग्रंथालय, लखनऊ, 2010

15. शिवशंकर उपाध्याय, *कबीर और भारतीय समाज*, साहित्य भवन, नई दिल्ली, 2015
16. विजयदेव नारायण सिंह, *कबीर : एक पुनर्पाठ*, ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2018
17. सूर्यकांत पाठक, *कबीर और उनका युग*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2006
18. हेमचंद्र मिश्रा, *कबीर : आध्यात्मिकता और आधुनिकता*, लोकभारती प्रकाशन, भोपाल, 2019
19. विजयदेव नारायण सिंह, *कबीर और आधुनिक चिंतन*, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, 2016
20. सुशील कुमार, *कबीर की साखी : समाज और संस्कृति*, भारतीय साहित्य परिषद, दिल्ली, 2005
21. श्यामसुन्दर मिश्र, *कबीर का काव्य और सामाजिक चेतना*, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2012
22. विजय केशव, *कबीर : समाज और समन्वय*, वाणी प्रकाशन, 2016
23. रामकुमार वर्मा, *कबीर का सामाजिक दर्शन*, साहित्य प्रकाशन, लखनऊ, 2011
24. प्रेमशंकर, *कबीर और मानवतावाद*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2009
25. सत्यप्रकाश मिश्र, *कबीर का भक्ति दर्शन*, ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2013
26. अरविन्द कुमार, *कबीर और लोकचेतना*, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2014
27. गणेश प्रसाद, *कबीर की काव्यकला*, साहित्य भवन, वाराणसी, 2007
28. महेशचन्द्र, *कबीर और समानता का विचार*, दिल्ली प्रकाशन, दिल्ली, 2018
29. सुरेश चन्द्र, *कबीर की प्रासंगिकता*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2020

30. रविन्द्र कुमार, *कबीर और जाति विर्मोन*, लोकभारती प्रकाशन, 2016


दृष्टिकोण
DRISHTIKON
India's Leading Multidisciplinary Referred Hindi Language Journal
PREVIOUSLY CARE LISTED
Certificate Of Publication
This is to certify that Mr./Ms. डॉ० ब्रजलता शर्मा (शोध निर्देशिका, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा जिला शिवपुरी(म०प्र०))
आरती शुक्ला (शोधार्थी, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा जिला शिवपुरी(म०प्र०)), in recognition of Publication of the
Paper entitled आधुनिक हिंदी कविता पर कबीर की काव्य दृष्टि का प्रभाव
Published in Drishtikon Journal
Vol. 17 Issues 3 in मई-जून, 2025
Impact Factor 5.051
ISSN 0975-119X
Editor

आधुनिक हिंदी कविता पर कबीर की काव्य दृष्टि का प्रभाव

डॉ० ब्रजलता शर्मा

शोध निर्देशिका, पी.जी. विज्ञानविद्यालय, कौरा जिला शिवपुरी म०प्र०)

भारती शुक्ला

शोधार्थी, पी.जी. विज्ञानविद्यालय, कौरा जिला शिवपुरी म०प्र०)

प्रस्तावना

कबीर दास हिंदी काव्य की परंपरा में ऐसे कवि हैं, जिन्होंने भाषा, विषय, संस्कृति और विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन किया। उनकी काव्य दृष्टि ने समकालीन बोध को तो नया आयाम दिया ही है। साथ ही आधुनिक हिंदी कविता को भी आत्मबल, प्रेरणा और विकसित किया है। कबीर की कविता में सामाजिक क्रांति, धार्मिक सुधार, रहस्यवाद और व्यंग्य एक साथ मिले हुए हैं, जो आधुनिक हिंदी कवियों के लिए प्रेरणा है।

कबीर की काव्य दृष्टि: स्वरूप और विशेषताएँ

कबीर की काव्य दृष्टि निर्गुण भक्ति, सामाजिक आलोचना, और व्यक्ति-धर्म विवेक पर आधारित है। वे परंपरा की रूढ़ियों, बाह्याचार, औपचारिक पूजा-पद्धति, एवं सामाजिक-सांस्कृतिक भेदभावों के विरुद्ध आवाज उठाते हैं और कविता को जन-जीवन, श्रम सादगी और अनुभव की भूमि से जोड़ते हैं। वे कबीर की भाषा में साखी, व्यंग्यात्मकता, अलंकारिता, और प्रतीकात्मकता आधुनिक कविता के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करती है।

कबीर की काव्य दृष्टि व स्वरूप और विशेषताएँ निम्नलिखित हैं, जो उनकी काव्य की मूल तत्व एवं प्रभाव को विस्तार से समझाती हैं:

1. भक्ति-भावना और निर्गुण उपासना

कबीर निराकार ईश्वर के उपासक थे। उनके लिए भगवान का स्वरूप अजन्मा, अनंत, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान था। उन्होंने राम, हरि, गोविन्द जैसे नामों का प्रयोग अपने इस निर्गुण खुदा के लिए किया। उनकी भक्ति भावनाएँ धार्मिक संकुचन से मुक्त और सार्वभौमिक थीं, जो व्यक्ति के अंदर आत्मा के साथ सीधे जुड़ती है। उनकी कविता में भक्ति ज्ञान और प्रेम का समन्वय है।

2. सामाजिक और धार्मिक सुधारक दृष्टि

कबीर का काव्य समाज सुधारक था। वे मूर्ति पूजा, कर्मकांड, आडम्बर, पाखण्ड, जाति व्यवस्था, धार्मिक संकीर्णता और ऊँच-नीच वाले धार्मिक मेलों के विरोधी थे। उनकी वाणी में सामाजिक अन्याय व धार्मिक भेदभाव के खिलाफ तीव्र भेलज और विद्रोह स्पष्ट झलकता है। उनका उद्देश्य समाज की कुरीतियों और अंधविश्वासों का अंत करना और मानवता का उत्थान था।

3. भाषा और शैली की विशेषता

कबीर की भाषा सहज, सरल, प्रभावशाली और जन जन तक पहुँचने वाली थी। उन्होंने हिंदी के साथ अवधी, ब्रज, राजस्थानी और फारसी जैसे विभिन्न भाषाओं का मिश्रण किया, जिसमें उनकी भाषा पंचमेल खिचड़ी कही जाती है। उनकी शैली तीन मुख्य रूपों में मौजूद थी-सरल और सुबोध, व्यंग्यपूर्ण और जोशपूर्ण, तथा जटिल और रहस्यपूर्ण। वे अलंकारों की सही प्रयोग से पाठक करते थे लेकिन विरोधाभासों और प्रतीकों का सहजता से प्रयोग करते थे।

4. सत्य के प्रति विश्वास

कबीर सत्य के बड़े उपासक थे। उन्होंने अपने दोहों में स्पष्ट किया कि सत्य को सबसे बड़ा तप मान जाना चाहिए और असत्य सबसे बड़ा पाप। वे झूठ, दिखावा, और छल-कपट के विरोधी थे। उनकी कविताएँ जीवन की सच्चाई पर आधारित हैं और उन्होंने सरल और सीधे जीवन को अपनाने की वकालत की है।

5. सार्वभौमिकता और धार्मिक समन्वय

कबीर सभी धर्मों को समान रूप से मानते थे और धार्मिक कट्टरता का समाधान करते थे। वे न तो हिन्दू और न मुस्लिम के समर्थक और न ही थे, बल्कि उन्होंने दोनों धर्मों की रूढ़ियों, पाखण्डों और दिखावे का विरोध किया, जिससे उनका काव्य व्यापक रूप से सार्वभौमिक दृष्टिकोण को व्यक्त करता है।

6. रस और छन्द की दृष्टि

कबीर की कविताओं में शृङ्गार, भक्ति, वैराग्य, संयोग-वियोग, और सामाजिक रस प्रमुखता से मिलते हैं। उनके दोहों, चौपाइयों और पदों में रस की विविधता गहराई से देखी जाती है। कबीर ने छन्दबद्ध रचना का प्रयोग किया लेकिन इस पर सख्ती नहीं की, जिससे उनकी भाषा सहज और प्रभावशाली बनी।

7. प्रतीकात्मकता और उलटबाँसियाँ

कबीर की कविता गूढ़ अर्थों और प्रतीकों से भरपूर है। वे उलटबाँसियाँ (जिनमें शब्द उलटे अर्थ प्रकट होते हैं) के माध्यम से गहरे आध्यात्मिक और दार्शनिक सत्य प्रस्तुत करते थे, जिसे समझने के लिए सोच-समझ और अंतर्दृष्टि आवश्यक होती है।

यह स्वरूप और विशेषताएँ कबीर की काव्य दृष्टि को सम्पूर्ण रूप से रेखांकित करती हैं, जो न केवल उनके काल के लिए, बल्कि आधुनिक हिंदी कविता एवं साहित्य के लिए भी एक अमूल्य प्रेरणा स्रोत है।

8. आधुनिक हिंदी कविता और कबीर की विरासत

आधुनिक हिंदी कविता में सामाजिक चेतना, विद्रोही स्वर, सामाजिक चेतना, और व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति के जो तत्व प्रमुख हैं, हिन्दी कविता उनकी जड़ें कबीर की काव्य दृष्टि में गहरे रूप से विद्यमान हैं।

हिंदी कविता और कबीर की विरासत का संबंध अत्यंत गहरा, बहुआयामी और सार्वकालीन काव्य चेतना को दिशा देने वाला है। कबीर की काव्य धारा ने आधुनिक हिंदी कविता के विचार, बोध, शैली, समाज-संवेदना और लोकधर्मी चेतना पर निर्णायक प्रभाव डाला है।

कबीर की सबसे बड़ी विरासत है- सामाजिक और सामाजिक विषमताओं के विरुद्ध विद्रोही स्वर। उन्होंने जाति, जाति, वर्ग, कर्मकांड, रूढ़ि, पाखंड तथा धार्मिक संकीर्णता की आलोचना की और सर्वत्र समानता की सर्वोच्च पीठिका किया। आधुनिक हिंदी कविता में यह विचारधारा प्रबलता से विद्यमान रहती है; आज के कवि भी समाज की विसंगतियों, सामाजिक शोषण, और मनुष्य के दुख-दुख को अपने काव्य का मूल आधार बनाते हैं।

आधुनिक कविता साहसिक, ज्वलंत और स्पष्ट अभिव्यक्ति की पक्षधर है- यह प्रेरणा कबीर से आई; मुक्तिबोध, नागार्जुन, धूमिल आदि कवियों में विद्रोह, अन्याय के प्रति आक्रोश, व्यवस्था का प्रतिरोध, और यथार्थ के प्रति आग्रह- जैसे गुण कबीर की विरासत के ही अंग हैं। कबीर की "सर्वसमूलक" दृष्टि ने हिंदी कविता को कंटकाकीर्ण पथ को सामाजिक सरोकारों से जोड़ा है।

कबीर ने जनभाषा, सहजता, व्यंग्य, प्रतीक और वाग्वैदग्धपूर्ण शैली को अपनाया। आधुनिक कविता ने कबीर की इस परम्परा को ग्रहण और रोचकता, सहजता, आडम्बर के संघर्ष की शैली में अपने आयामों दिया। शब्द-प्रयोग, लोकोक्तियाँ, अनुप्रासयुक्त अभिव्यक्ति तथा बिम्ब-रचना में कबीर जैसे लोकधर्मी तत्व आधुनिक कविता की मूल विशेषता बने।

कबीर ने काव्य-काव्य में अपने जीवनानुभव, हृदय-वेदना, आत्म-संघर्ष तथा आत्म-ज्ञान की पीड़ा प्रकट की। यही प्रवृत्ति 'स्वानुभूतिपरक' आधुनिक कविता में भी अनुस्यूत रही- कवि अपने अनुभव, जीवन के संघर्ष, और चिन्तन को ही केंद्रीय बनाता है।

कबीर की कविता लोक के सरोकारों, जन-जीवन, कर्मप्रधान दृष्टि और श्रमिक चेतना से प्रेरित थी। आधुनिक कविता में यह विरासत विभिन्न कवियों की 'जनवादिता' और 'लोकधर्मिता' के रूप में दिखती है। अब कविता जन-सरोकार का साधन है, किसी एक वर्ग या कूल का नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानवता का संधार है।

- कबीर की भाषा विविधता और स्थानीयता के कारण आधुनिक हिंदी कविता को सशक्त प्रेरणा मिली।
- कबीर ने पूर्वी हिंदी, अवधी, ब्रज, पंजाबी शब्द के प्रयोग द्वारा भाषा को आमजन तक पहुँचाया- यह लोकतांत्रिक भाषा दृष्टि आधुनिक कविता में भी स्थायी रूप से स्थापित हुई।
- प्रतीक, व्यंग्य, पुनरुक्ति-कबीर के काव्य शिल्प के ये गुण आधुनिक कविता में जैसे ही आए जैसे ही कविता का स्वरूप जन-संघर्ष और सामाजिक सरोकार से जुड़ गया।
- कबीर की कविता में सामाजिक विद्रूपताओं, अन्धविश्वास, जाति-पाँति, कर्मकांड और धार्मिक आडंबर पर तीखा प्रहार मिलता है।आधुनिक कविता में भी ये प्रश्न सामाजिक सरोकारों, संघर्ष, और आलोचना के रूप में सामने आते हैं।
- जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान- यह सबल आज के कवियों में सामाजिक विसंगतियों को सहज देने के रूप में आता है।
- कबीर की सामंजस दृष्टि-जीवनमूल्यों, लोकसंग्रह एवं मनुष्य पर केंद्रित कविता का प्रबलेन आधुनिकता का अविभाज्य तत्व बना।

निष्कर्ष

आधुनिक हिंदी कविता में कबीर की काव्य दृष्टि न केवल विषय, भाषा, अनुभूति और शैली को गहराई से प्रभावित करती है, बल्कि कविता को जीवन, आचरण, संघर्ष और सकारात्मक परिवर्तन का माध्यम बनाती है। विद्रोही चेतना, सामाजिक प्रासंगिकता, अनुभव आधारित अभिव्यक्ति, एवं दिव्य-लिंटेलेक दृष्टि सभी स्तरों पर कबीर आधुनिक हिंदी कविता के आदि प्रेरक हैं।

कबीर की विरासत व्यापक और जीवंत है। उनका सामन्तशाही, विद्रोही स्वर, सामाजिक आलोचना, जीवन-सापेक्षता, अनुभूति की गहराई तथा भाषा की सहजता आज भी कविता की धारा में नई ऊर्जा और दिशा प्रदान करती है। इसीलिए कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी कविता बिना कबीर की विरासत के न तो अपने स्वरूप में इतनी प्रखर होती, न समाज-सरोकार या जनवादी चेतना में इतनी दृढ़ प्रतीत होती।

दृष्टिकोण

संदर्भ सूची

1. 'पंचशील शोध समीक्षा' संपादक - डॉ. शेरू थपलियाल, पृ. 49।
2. 'मुक्तिबोध निबंध' कृष्णदत्त भारती, पृ. 25।
3. 'काव्य परम्परा और नयी कविता की भूमिका', कमल कुमार, पृ. 87।
4. 'हिंदी आलोचना में कबीर'।
5. 'कबीर की याद'।
6. 'कबीर की सामाजिक विचारधारा'।

यह शोध आलेख आपके शोध, प्रस्तुति और पठन अध्ययन के लिए संदर्भ सहित पाँच पृष्ठों का विस्तृत स्वरूप है; इसे आवश्यकतानुसार विस्तार अथवा संक्षिप्त किया जा सकता है।

(1) डा॰ कबीर और आधुनिक हिन्दी काव्य: शोध आलेख (प्रकाशित रोचे) - डमरु।
(2) कबीर की काव्य संवेदना और आधुनिक बोध - मोहिनी पलसंघ
(3) कबीरदास और आधुनिक काव्य-संवेदना
(4) हिन्दी आलोचना में कबीर
(5) कबीर की सामाजिक विचारधारा।
(6) कबीर की काव्य दृष्टि - डॉ॰ पद्मेश कुमार
(7) कबीर की काव्यगत विशेषताएँ।
(8) कबीरदास का जीवन परिचय एवं काव्यगत विशेषताएँ -
(9) कबीर की काव्य दृष्टि - डॉ॰ पद्मेश कुमार
(10) कबीरदास का जीवन परिचय और काव्यगत विशेषताएँ
(11) डा॰ कबीर और आधुनिक हिन्दी काव्य, डमरु।
(12) कबीर की काव्य संवेदना और आधुनिक बोध, मोहिनी पलसंघ।
(13) कबीरदास और आधुनिक काव्य-संवेदना, UGC/ST.
(14) हिन्दी आलोचना में कबीर।
(15) कबीर की सामाजिक विचारधारा।
(16) आधुनिक समय में कबीर की सामाजिक प्रासंगिकता।

www.bohalshodhmanjusha.com Bohal Shodh Manjusha ISSN: 2395-7115
Impact Factor: 8.642 January 2026 Page No. : 60-62
AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.18380036

कबीर के काव्य में आध्यात्मिक, अनुभव एवं सामाजिक विद्रोह

डॉ. ब्रजलता शर्मा
शोध निर्देशिका,
आरती शुक्ला
शोधार्थी,
पी.के. विश्वविद्यालय करैरा जिला शिवपुरी(म०प्र०)

शोध सार :–
भक्तिकालीन निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रवर्तक, कालजयी सतंकवि कबीर अनुठे व्यतित्व को लेकर उत्पन्न हुए। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत साधना सम्बन्धी विचारो को इस रूप मे अभिन्यता किया कि वे समाजोपयोगी बन गए। कबीर ऐसे संक्रमणशील युग में अवतरित हुए जब समाज में अनेक मत मतांतरो एवं साधना पद्धतियों का प्रचलन था। उन्होने सिद्धों की वाणी, नाथों की हठयोग साधना, सूफी साधकों के प्रेम तत्व, भारतीय वेदांत के अद्वैतवाद, इस्लाम के एकेश्वरवाद आदि में समन्वय स्थापित कर मौलिक आध्यात्मिक अनुभव ग्रहण किए और इन्ही आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर समाज मे व्याप्त अमानवीय पाखण्डों का विरोध कर सामाजिक समरसता स्थापित करने का प्रयास किया।

बीज शब्द : निर्गुण, अद्वैतवाद एकेश्वरवाद, आध्यात्मिक, हठयोग, सामाजिक समरसता।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे चौदहवीं शताब्दी के मध्य से सत्रहवीं शताब्दी के मध्य का कालखण्ड भक्तिधारा के विकास का रहा जो भक्तिकाल के नाम से अभिहित है। भक्तिकाल के उदय को लेकर विभिन्न विद्वानों मे मतभेद है। डॉ० ग्रियर्सन ने इसे ईसाइयत की देन कहा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे बाह्य आक्रमणों का प्रभाव माना। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्तिकाल को बाहरी प्रभाव की उपज न मानकर भारतीय परम्परा स्वतः स्फूर्त विकास माना है। वे भक्तिकाव्य के विकास के पीछे दो तत्व मानते है–1) बौद्ध चिंतन प्रक्रिया का विकास, और (2) प्राकृत, अपभ्रंशो की श्रृंगारिकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया। जयशंकर प्रसाद ने इसे भारतीय अनात्मवाद की प्रतिक्रिया माना है। प्रसिद्ध पाश्चात्य कला आलोचक और इतिहासकार प्रो. टेवेल ने अपने 'हिस्ट्री ऑफ आर्यन रूल' में लिखा है मुसलमानी सत्ता के प्रतिष्ठित होते ही हिंदू राजकाज से अलग कर दिए गए इसलिए दुनिया के झंझटों से छुट्टी मिलते ही उनमें धर्म की ओर जो उनके लिए एकमात्र आश्रय स्थल रह गया था, स्वाभाविक आकर्षण पैदा हुआ।' वस्तुतः भक्तिकाल में भागवत धर्म का प्रचार प्रसार बढ़ा और भक्ति भावनाओं की अभिव्यक्ति लोक भाषाओं के माध्यम से हुई। यह ऐसा काल था जब राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों मे उथल पुथल मची थी। समाज का निम्न वर्ग स्वयं को निराश्रित एवं भ्रमित अनुभव कर रहा था। ऐसे काल में युगद्रष्टा कवि कबीरदास का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने भक्ति को आन्दोलन का रूप दिया, सामान्य जन जीवन की नीरसता में रस घोलकर कुंद होती हुई संवेदनाओं को नया जीवन दिया।

कबीर की आध्यात्मिक भावना का स्वरूप :

कबीर भक्तिकाव्य धारा के आदि कवि है क्योंकि वीरगाथा काल के बाद कबीर से पूर्व अन्य किसी भक्त कवि का वर्णन नहीं मिलता। संस्कृत साहित्य के आदिकवि महर्षि वाल्मीकि का प्रारंभिक जीवन अज्ञान से भरा था और संत कबीर भी पढ़े लिखे नहीं थे।

कबीर का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ और पालन पोषण मुसलमान परिवार मे दोनों कुलों का प्रभाव कबीर की वाणी में परिलक्षित होता है। कबीर ने स्वयं को जुलाहा कई बार बताया लेकिन हिन्दू या मुसलमान बताने का प्रयास नही किया।

जाति जुलाहा क्या करे हिरदै बसै गोपाल।[2]

कबीर ऐसे युग में उत्पन्न हुए जब समाज में विविध धर्म साधनाओं मत–मतान्तरों के संस्कार मौजूद थे। उन्होंने सभी से कुछ न कुछ ग्रहण कर एक नये मार्ग की स्थापना की। कबीर 'मुसलमान होकर भी असल में मुसलमान नहीं थे। वे हिंदू होकर भी हिंदू नहीं थे। वे साधु होकर भी साधु नही थे। वे वैष्णव होकर भी वैष्णव नहीं थे। वे योगी होकर भी योगी नहीं थे। वे भगवान के नृसिंहावतार की मानो प्रतिमूर्ति थे।[3] वस्तुतः कबीर का अध्यात्म भाव बहुत उच्च स्तर का था। उन्होंने समाज में विभिन्न परिस्थितियों में समन्वय स्थापित किया और परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली मान्यताओं के बीच सामजस्य स्थापित कर साधारण जनमानस में जीवन की नए संवेदनायें विकसित की।

कबीर की वाणी में सांसारिकता एवं आध्यात्मिकता का संगम है। उनके अनुसार, धर्म कोई वाह्याडम्बर की वस्तु नहीं है। मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन ही धर्म है। यह समस्त संसार ही धर्म के भीतर प्रतिष्ठित है। इस प्रकार संकीर्ण होती हुई मान्यताओं के बीच उन्होंने धर्म की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की है।

कबीर निर्गुण भक्ति प्रवाह के प्रवर्तक है। वे ऐसे निराकार ब्रह्म के उपासक है जो सर्वव्यापी है। वे सांसारिक जीवों को निर्गुण राम का नाम जपने का उपदेश देते हैं–

निरंगुन राम जपहु रे भाई,
अतिगति की गति लखी न जाई।

कबीर, निश्चित रूप से, निर्गुण ब्रह्म के उपासक है परन्तु उनकी निर्गुण भक्ति पर सगुण रूप का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वे सूर और तुलसी की सगुण भक्ति धारा का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इन्होने अपने पदों में अनेक स्थानों पर प्रभु की अवतार रूप में की गई लीलाओं का उल्लेख मिलता है जैसे–

अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हा
तेऊ उतरि परि गये राम नाम लीन्हा।[4]

संभवतः उन्होंने राम नाम की अपरम्पार महिमा का वर्णन के लिए इन प्रसंगों का उपयोग किया है।

कबीर ने कई स्थानों पर हरि, गोविन्द, केशव, माधव आदि पौराणिक नामों का उपयोग किया है। परन्तु सगुण अवतार के अर्थ में नहीं वरन निर्गुण ब्रह्म के रुप मे। इसी प्रकार उन्होंने अनेक स्थानों पर अल्लाह, रब खुदा संबोधनों का प्रयोग कर अपने परम उपास्य का आहवान किया। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि, मुसलमान होने के नाते इन नामों का प्रयोग करते है। वस्तुतः उनकी भक्ति नाम निरपेक्ष है। सम्भवतः उन्होने जन का ध्यान आकर्षित करने के लिए इन प्रचलित संबोधनों का प्रयोग किया है। उन्होंने राम का प्रयोग सबसे अधिक किया है जिसे भारतीय वैष्णव मत के प्रभाव के रुप मे देखा जा सकता है। कई विद्वान् कबीर को वैष्णव भी मानते है। वास्तव में कबीर का अल्लाह' अलख निरंजन देव है जो सेवा से परे है, उनका 'विष्णु' वह है जो संसार रूप में विस्तृत है, उनका कृष्ण वह है जिसने संसार का निर्माण किया है; उनका 'गोविंद' वह है जिसने ब्रह्मांड को धारण किया है; उनका 'राम' वह है जो सनातन तत्व है, उनका 'खुदा' वह है जो दस दरवाजों को खोल देता है, 'रब' वह है जो चौरासी लाख योनियों का परवरदिगार है, 'करीम' वह है जो इतना सब कर रहा है, 'गोरख वह है जो ज्ञान से गम्य है; महादेव वह है जो मन को जानता है; सिद्ध वह है जो इस चराचर दृश्यमान जगत का साधक है, नाथ वह है जो त्रिभुवन का एकमात्र यति या योगी है–जगत् के जितने साधक हैं, सिद्ध हैं, पैगम्बर हैं वे इस एक की ही पूजा करते है, अनंत है इसके नाम अपरम्पार उसका स्वरूप वही कबीरदास का भगवान है।

कबीर कहते है–

अलह अलख निरंजन देव, किहि विधि करौ तुम्हारी सेव।
विश्न सोई जाको विस्तार, सोइ कृस्न जिनि कीयौ संसार।
गोव्यंद ते ब्रह्माहि नहै, सोइ राम जे जुगि जुगि रहे।।
अलह सोई जिनि उमति उपाई, दस दर खोले सोई खुदाई।
लख चौरासी रब परवरै, सोई करीम जे रती करै।
गोरख सोई ग्यान गमि गहे, महादेव सोई मन को लहै।।
सिध सोई जो साधै इति, नाथ सोई जो त्रिभवन जती।
सिध साधू पैकवर हुवा, जपै सू एक भेष है जूवा।
अपरम्पार की नाउ अनत, कहै कबीर सोई भगवंत।[4]

कबीर गैर समझौतावादी व्यक्तित्व वाले है। डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार, "कबीर पहले व्यक्ति है जिन्होंने विभिन्न धर्मों, संप्रदायों, जातियों, वर्णों को नकारकर ऐसे समाज की स्थापना का प्रयास किया जिसमें धर्म, संप्रदाय, ऊँच नीच के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं है।"[13] उन्होंने कबीर को हिन्दी भक्तिकाव्य का प्रथम क्रान्तिकारी पुरस्कर्ता बताया। वस्तुतः कबीर की आध्यात्मिक चेतना को अलग करके नहीं देखा जा सकता। जब वे अध्यात्म की बात करते है वहीं समाज के प्रति उनकी चिन्ता स्पष्ट झलकती है। कबीर के पद सबद और रमैनी उनके आध्यात्मिक दर्शन को स्पष्ट करते है और उनकी साखियों में सामाजिक चेतना के साथ–साथ आध्यात्मिक के दर्शन भी होते हैं। उनकी मनमौजी और फक्कड़ वृत्ति सामाजिक आक्रोश बनकर काव्य के रूप में प्रकट है। वे मूलतः भक्त है काव्य रचना उनका उद्देश्य नहीं है। वे मूलतः व्यक्तिगत साधना के ही प्रचारक है। अपनी व्यक्तिगत साधनात्मक मान्यताओं के आधार पर उन्होंने समाजोपयोगी मान्यताओं का अपने उपदेशों के माध्यम से प्रचार किया। इस कारण उन्हें समाज सुधारक नहीं कहा जा सकता। कबीर समाज सुधारक नहीं वरन पथ प्रदर्शक है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कबीर का स्थान अद्वितीय है। उनके मस्तमौला एवं फक्कड़पन उन्हें अनूठा बना दिया। उन्होंने तत्कालीन समाज में लोगों की टूटी हुई आस्थाओं को सम्बल प्रदान किया। उनके उपदेश का उपदेश धूमिल होती हुई संवेदनाओं के लिए संजीवनी सिद्ध हुए। निराशा में आशा का संसार करती हुई उनकी वाणी ने सामाजिक समरसता का पाठ पढाया। ये कवि नहीं, संत कवि है जिन्होंने मनुष्य मात्र से प्रेम का उपदेश दिया। वे एक ऐसे रचनाकार है जिनके कृतित्व को समाज से और व्यक्तित्व को रचना से भिन्न नहीं किया जा सकता है। वे सच्चे अर्थों में सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक रचनाकार है जिनके ऊपर सांसारिक जन्म मरण के नियम लागू नहीं होते।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास लेखक –रामस्वरूप चतुर्वेदी पृ०–33, लोक भारती प्रकाशन।
2. कबीर ग्रन्थावली सं. श्याम सुन्दर दास पृ०–240 (लोकभारती भारम्)
3. हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास लेखक–आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ०–75,
4. कबीर ग्रन्थावली स. श्याम सुन्दर दास–पद–320, पृ०–195
5. कबीर–लेखक – हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ०– 97,(राजकमल प्रकाशन)
6. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दर दास पद–327, पृ०–197
7. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दर दास पद–12, पृ०–252
8. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दर दास पद–79, पृ०–268
9. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दर दास पद–186, पृ०–161
10. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दर दास पृ०–80
11. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दर दास पृ०–83
12. कबीर ग्रन्थावली, सं. श्यामसुन्दर दास पृ०–78
13. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास–लेखक–डा0 बच्चन सिंह (राधाकृष्ण प्रकाशन) पृ०–91

ISSN:2395-7115



बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Ref. No.January 2026/10 https://doi.org/10.5281/zenodo.18380036

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. ब्रजलता शर्मा,
शोध निर्देशिका,
आरती शुक्ला
शोधार्थी,
पी. के. विश्वविद्यालय करैरा जिला शिवपुरी (म०प्र०)

for the paper titled

कबीर के काव्य में आध्यात्मिक, अनुभव एवं सामाजिक विद्रोह

Publised in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115
January 2026, Vol. 23, Issue-1, Page No 60-62



Editor
Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A. (JMC), M.Lib & Information Science, DHLT, M.Phil. Ph.D., Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152